भगवान रजनीश की सृजनात्मक
युग क्रांति दर्शन की मासिक संकलन पत्रिका

युक्रांद

सितंबर १९७४

मूल्य : १.२५ रु०

Bhagwan Rajneesh Literature

I Original English Books

1. The Inward Revolution 15.00
2. I am the Gate 10.00
3. Dynamics of Meditation 15.00
4. The Silent Explosion 12.50
5. Wisdom of folly 6.00
6. Thus spake Mulla Nasrudin 6.00
7. Meditation : A new Dimension 3.00
8. Beyond & Beyond 3.00
9. What is Meditation ? 4.00
10. Secrets of Descipleship 3.00
11. Flight of the alone to the alone 2.50
12. LSD : A shortcut to False Samadhi 2.00
13. Yoga : A spontaneous Happening 2.00
14. The Gateless Gate 2.00
15. The Slient Music 2.00
16. Turning In 2.00
17. The Eaternal Message 3.00
18. The Dimensionless Dimension 2.00
19. Seriousness 2.00
20. The Vital Balance 1.50

II Translated from Original Hindi

21. From Sex to Superconsciousness 6.00
22. Path to self Realisation 5.00
23. Earthen Lamps 4.50
24. Seeds of Revolutionary Thought 4.50
25. Mysteries of life & Death 4.00
26. Wings of Love & Random Thoughts 3.50
27. Towards the Unknown 1.50
28. Lead kindly light 1.50

III Critical Studies on Bhagwan Shri Rajneesh

29. Acharya Rajneesh : The Mystic of feeling 20.00
30. Lifting the veil 10.00
31. Acharya Rajneesh : A Glimpse 1.25

★

भगवान रजनीश की सृजनात्मक
युग क्रांति दर्शन की मासिक
संकलन पत्रिका

युक्रांद

वर्ष – ६ अंक – ३

मूल्य एक प्रति : १-२५ रु.
„ वार्षिक : १५-०० रु.

सितंबर १९७४

मानसेवी संपादक मंडल :

○ अरविन्दकुमार
○ डॉ. उर्मिला, पी-एच.डी.
○ 'आकुल' राजेन्द्र
(साधु आनन्द 'आकुल')
○ आलोक पाण्डे

□ स्वामी धर्म सरस्वती, व्यवस्थापक

युक्रान्द

सितंबर ७४

★

अनुक्रमणिका

प्रवचन : संकलन

: ३ : अहं विसर्जन है मार्ग
(भगवान श्री की बोध-कथाओं से)

: ५ : क्षुद्र प्रयास विराट सत्य
संकलन : स्वामी नरेन्द्र बोधिसत्व, पूना

: २३ : काम-वासना की अंतर्यात्रा
संकलन : स्वामी आनन्द मैत्रेय, पूना

: ३५ : पूना साधना शिविर—झलकियां : १० जून से २० जून ७४
प्रस्तोता : स्वामी अगेह भारती, जबलपुर

: ४६ : आचार्य : भगवान

गीत : काव्य

: ४ : भक्ति गीत
परमानन्द भारती, अजमेर

: ३४ : रजनीश के प्रति
स्वामी योग प्रीतम, भीलवाड़ा

: ४७ : सजग जीवन
बी० के० मेहता, अहमदाबाद

स्वत्वाधिकारी प्रकाशक : अरविन्दकुमार, ७९०, राइट-टाउन, जबलपुर.
मुद्रण : अशेष प्रिन्टर्स, ७८१, राइट टाउन, जबलपुर. ☎ 2957 P.P.

बोध कथाएं

अहं विसर्जन है मार्ग

सत्य और स्वयं में जो सत्य को चुनता है, वह सत्य को भी पा लेता है और स्वयं को भी। और जो स्वयं को चुनता है, वह दोनों को खो देता है।

मनुष्य को सत्य होने के पूर्व स्वयं को खोना पड़ता है। इस मूल्य को चुकाये बिना सत्य में कोई गति नहीं है। उसका होना ही बाधा है। वही स्वयं सत्य पर पर्दा है। उसकी दृष्टि ही अवरोध है—वह दृष्टि जो कि 'मैं' के बिन्दु से विश्व को देखती है। 'अहं दृष्टि' के अतिरिक्त उसे सत्य से और कोई भी पृथक नहीं किये है। मनुष्य का 'मैं' हो जाना ही, परमात्मा से उसका पतन है। 'मैं' की पार्थिवता में ही वह नीचे आता है और 'मैं' को खोते ही वह अपार्थिव और भागवत सत्ता में ऊपर उठ आता है। 'मैं' होना नीचे होना है, 'न मैं' हो जाना ऊपर उठ जाना है।

किन्तु जो खोने जैसा दावता है, वह वस्तुतः खोना नहीं पाना है। स्वयं की जो सत्ता खोनी है, वह सत्ता नहीं, स्वप्न ही है और उसे खोकर जो सत्ता मिलती है वही सत्य है।

बीज जब भूमि के भीतर स्वयं को बिलकुल खो देता है, तभी वह अंकुरित होता है और वृक्ष बनता है।

●

भक्ति गीत

जीवन है दिन चार,
रे मन, मतकर सोच-विचार ।

भव-सागर तूं बहु दुःख पायो, अपने प्रभु की शरण न आयो ।
प्रभु के हाथ पतवार सौंप दे, तारेंगे तारनहार । रे मन,...

मूरख तेरी मती भरमानी, जनम-मरण की रीति न जानी ।
जिनकी कृपा जनम यह पायो, तिनको दिया बिसार। रे मन,...

तजकर कोशिश, छोड़ के आसा, अपने प्रभु पर कर बिस्वासा
सौंपदे अपना सब कुछ उनको, हो जा तुं निर्भार । रे मन,

जीना होय तो हंसकर जीले, प्रभु के प्रेम का प्याला पीले ।
समय जाय, फिर लौट न आवे, बह्यो जात संसार । रे मन,...

'परमानंद' अब हार मान ले, प्यारे प्रभु की बांह थाम ले ।
सुमिरन, सेवा कर तू उनकी, और न समय बिगार । रे मन,...

□ परमानंद भारती
अजमेर (राज.)

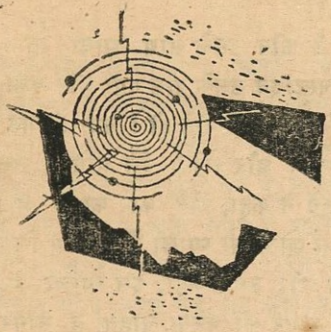

□

१४ अगस्त, ६७ को घाटकोपर, बम्बई में भगवान श्री के प्रश्नोत्तर प्रवचन से।

□

क्षुद्र प्रयास : विराट सत्य

एक मित्र ने पूछा है कि परमात्मा की अनुभूति, उसका प्रसाद, उसका किन्हीं-किन्हीं क्षणों में अचानक मिल जाता है और फिर खो जाता है। फिर बहुत प्रयास करने पर भी वह झलक दिखाई नहीं पड़ती। तो हम क्या करें?

मनुष्य के जीवन में निश्चित ही कभी-कभी अनायास ही कोई आनंद का स्रोत खुल जाता है, कोई अन्तर-नाद सुनायी पड़ने लगता है, कोई स्वर संगीत प्राणों को घेर लेता है। सभी के जीवन में ऐसे कुछ क्षण स्मृति में रहे हैं। फिर हमारा मन करता है इस अनुभूति को और पाने के लिए और तब, तब जैसे उस अनुभूति के द्वार बन्द हो जाते हैं।

इसमें दो बातें समझ लेना जरूरी हैं। एक तो, जीवन में जो भी महत्व-पूर्ण है और श्रेष्ठ है, वह कभी मनुष्य के प्रयास से नहीं उपलब्ध होता है। मनुष्य बहुत क्षुद्र और छोटा है। उसकी सीमाएं हैं, और आनन्द की कोई सीमा नहीं है। जब मनुष्य अनुपस्थित होता है तभी वे आनन्द के द्वार खुलते हैं। और जब मनुष्य बहुत प्रयास करके उपस्थित हो जाता है तब वे द्वार बंद हो जाते हैं। परमात्मा को आज तक किसी ने प्रयास से नहीं पाया है। अप्रयास से ही, एफर्ट से नहीं, एफर्टलेसनेस में ही उसकी प्रतीति और अनुभव होता है।

मैं किसी को प्रेम दूं और अगर प्रयास से दूं तो वह प्रेम झूठा हो जाता है। वह अप्रयास से बहे, सहज तो ही सत्य होगा। जीवन में जो भी सत्य है, सुन्दर है वह मनुष्य के प्रयास से पैदा नहीं होता। तो अनायास से अनुभूति मिलती है। केवल प्रयास करके जो उसे लाना चाहते हैं तो वह

छूट जाती है। एक छोटी सी घटना कहूं, उससे शायद मेरी बात ख्याल में आये:—

एक ईसाई फकीर हुआ अगस्टाइन, तीस वर्षों से निरन्तर प्रयास करता था परमात्मा की झलक पाने के लिए। कोई कोरकसर न छोड़ी थी अपने प्रयास में। तीन वर्ष आंखें आंसू बहा कर भीग गयी थीं। रात और दिन नहीं जानी थी, सोया नहीं था, भोजन नहीं किया था। उसकी आकांक्षा में, उसकी ही प्यास में, उसकी ही प्रार्थना में दिन और रात बिताये थे। सूखकर हड्डी हो गया था। लेकिन उसकी कोई झलक पा न सका था। बल्कि जितना उसने प्रयास किये थे वैसे ही वह उतना दीन होता चला गया। वह दूर होता चला गया था, उसके प्रयास तीव्र होते चले गये थे। जितने प्रयास तीव्र होते गये उतना वह और दूर होता चला गया। एक दिन सुबह रात भर रोने के बाद उठा था वह और समुद्र के किनारे घूमने निकल गया था। कोई भी न था समुद्र के तट पर। अभी सूरज भी ऊगने को था। अचानक उसने देखा कि एक पत्थर के पास एक छोटा सा बच्चा खड़ा है। उसके आंसू से बह गये हैं। वह भी रात भर रोता रहा था। यह छोटा सा बच्चा समुद्र के किनारे आंखों में आंसू लिए क्यों खड़ा हुआ है? कौन उसके साथ आया था? अगस्टाइन उसके पास गया और कहा, मेरे बेटे, क्यों रोते हो? क्या हो गया तुम्हें? और अकेले कैसे आये? उस बच्चे ने कहा, रोने का कारण है। एक छोटी सी प्याली मैं हाथ में लिये था और उसने कहा, इस प्याली में, मैं सागर को भरना चाहता हूं, सागर भरता नहीं है। इसलिए रोता हूं। क्या करोगे भरकर? सागर को भर कर घर ले जाने का मन है, लेकिन सागर भरता नहीं है। प्याली छोटी पड़ जाती है।

उस बच्चे का यह कहना जैसे अगस्टाइन के लिए परमात्मा की ध्वनि हो गयी। वह खूब जोर से हंसने लगा और उस बच्चे से बोला, तू ही ऐसी भूल में पड़ा हो, ऐसा नहीं, मैं भी ऐसी भूल में तीस साल से पड़ा हूं। अपनी जिन्दगी की छोटी सी प्याली में परमात्मा के सागर को भरने के लिए मैं भी बहुत रोया हूं। यह हो भी सकता है कि तेरी प्याली में सागर कभी भर जाय क्योंकि सागर की फिर भी सीमा है, लेकिन मेरी जिन्दगी की प्याली में तो परमात्मा कैसे भरेगा, उसकी तो कोई सीमा नहीं। अगस्टाइन ने उस बच्चे से कहा, मैं तो अपनी प्याली तोड़े देता हूं। अगस्टाइन नाचता हुआ वापस लौट आया अपनी कुटी पर।

उसके मित्र हैरान हुए। समझा शायद अगस्टाइन को वह मिल गया जिसके लिये उसके प्राण रोते रहे थे। वे सब उसके निकट इकट्ठे हो गये थे, उसकी आंखों में आज बड़ी अद्भुत ज्योति थी। आज उसके प्राणों में अद्भुत पुलक थी। आज वह हर क्षण नाच रहा था। उन्होंने पूछा, अगस्टाइन मिल गया क्या वह ? अगस्टाइन ने कहा, नहीं, वह तो नहीं मिला, लेकिन मैंने खुद को खो दिया। और जिस क्षण मैंने खुद को खोया मैंने पाया कि वह तो सदा से मिला हुआ है।

मनुष्य का अहंकार ही बाधा है परमात्मा को पाने के लिए। अप्रयास के क्षणों में कभी अचानक जब मनुष्य का अहंकार सोया होता है, अनुपस्थित होता है, उसकी एक झलक किनारे से निकल जाती है। जैसे ही उसकी झलक निकल जाती है, भीतर एक आनन्द उमड़ उठता है। सिर्फ आनन्द को पकड़ने को हम लालायित हो जाते हैं, हम लोभी हो जाते हैं, हम लोभी हो जाते हैं। फिर हम उसके पीछे दौड़ने लगते हैं तो अहंकार वापस आ जाता है, मैं फिर खड़ा हो जाता हूं। फिर उसे खोजता हूं खोजता हूं, उस पर कोई हाथ नहीं पड़ता। अहंकार उसे कभी भी नहीं पा सका है।

इसलिए जिन मित्र ने पूछा है अगर अनायास उसकी झलक मिलती हो तो फिर प्रयास न करें उसके लिए क्योंकि प्रयास बाधा बन जाएगा। फिर ऐसे जियें बिना प्रयास के, बिना एफर्ट के, बिना कोशिश के। तब उसकी झलकें बढ़ती चली जायेंगी। और जिस दिन कोई कोशिश मन में न होगी, उसी दिन वह उपलब्ध हो जाता है। संसार और सत्य को पाने की दिशाएं बड़ी विपरीत हैं। संसार में कुछ भी पाना हो तो प्रयत्न करना होता है, प्रयास करना होता है। क्योंकि संसार की सारी दौड़ अहंकार की दौड़ है। परमात्मा को पाने की बात बिल्कुल उल्टी है। वहां जो प्रयास करेगा, प्रयत्न करेगा वह खो देगा उसे। वहां तो जो अप्रयास में छोड़ देगा अपने को उसे पा लेगा।

नदी में कोई आदमी गिर पड़े तो तैर भी सकता है और बह भी सकता है। जो तैरता है वह प्रयास कर रहा है, जो बहता है, वह प्रयास नहीं करता है। जो बहता है फिर नदी की ताकत उसे बहा ले जाती है। जो तैरता है उसे अपने श्रम पर निर्भर होना होता है। खुद के श्रम की सीमा है। थक जायेगा, लेकिन जो बहा है, उसके सामर्थ्य की कोई सीमा नहीं है। क्योंकि अपनी शक्ति उसने लगायी ही नहीं।

परमात्मा की खोज में तैरने

वाले लोग असफल हो जाते हैं, बहने वाले लोग सफल हो जाते हैं। तैरना सीखना पड़ता है, बहना नहीं। तैरना हमारी अस्मिता है, हमारी इगो है। मैं पा लूं।

एक छोटी सी कहानी है, उससे मैं प्रश्न का उत्तर आपको दूं—

एक बड़ी झूठी कहानी है लेकिन बड़ी सच भी है। एक बहुत अद्‌भुत मूर्तिकार हुआ। उसकी मृत्यु आ गयी। वह डरा हुआ था। मृत्यु से बचना चाहता था। उसने अपनी ही बारह मूर्तियां बना लीं और उनमें छिपकर खड़ा रहता था। मौत भीतर आयी। उसने उन मूर्तियों पर आंख डाली। वह मूर्तिकार भी श्वांस को रोके उन्हीं मूर्तियों में छिपा था। मृत्यु पहचान न पायी, कौन है असली आदमी? जिसे ले जाना है। वहां एक जैसे बारह लोग थे। मौत वापस लौट गयी। और उसने परमात्मा को जाकर कहा, वहां तो एक जैसे बारह लोग हैं, मैं किसको लाऊं। परमात्मा ने मौत के कान में एक सूत्र कहा। कहा, इस सूत्र को बोल देना, जो असली आदमी है वह अपने आप बाहर निकल आयेगा। वह मौत वापस लौटी। वह फिर उस कमरे में गयी जहां उन मूर्तियों में छिपा हुआ मूर्तिकार खड़ा था। उसने जाकर मूर्तियों पर गौर से दृष्टि डाली और उसके बाद वह जोर से बोली, और तो सब ठीक है, एक छोटी सी भूल रह गयी है। वह मूर्तिकार बोल उठा, कौन सी भूल? उस मृत्यु ने कहा, यही कि तुम अपने को नहीं भूल सकोगे। बाहर आ जाओ। तुम यह न भूल सके कि तुमने इन मूर्तियों को बनाया है। तुम यह न भूल सके कि तुम बनाने वाले हो। अगर इतना भी तुम भूल जाते तो तुम्हें खोजने का मेरे पास कोई उपाय न था।

अहंकार जहां खड़ा है वहां मृत्यु से तो मिलन हो सकता है लेकिन अमृत से नहीं। जहां अहंकार नहीं है वहां अमृत से मिलन है। वह अमृत ही परमात्मा है, वह अमृत ही आनन्द है, वह अमृत ही सत्य है। छोड़ दें अपने को, ताकि वह आ सके। मत अपने को बीच में खड़ा करें, ताकि दीवाल बन जाय। हमारे अतिरिक्त परमात्मा और हमारे बीच कोई भी नहीं है। हम जितना प्रयास करते हैं उतना ही यह मेरा मैं मजबूत होता चला जाता है। उतनी ही दीवाल मजबूत होती चली जाती है। उतनी ही उसकी झलकें मिलनी कठिन हो जाती हैं। अपने को छोड़ दें—अपने को बिल्कुल छोड़ दें, जैसे नहीं हैं। जिस क्षण आप नहीं हैं उसी क्षण द्वार मिल जाता है।

कबीर ने कहा है, मैं बांस की

एक पोंगरी हूं, एक बांसुरी हूं। उसके स्वर मेरे भीतर से बहते हैं। अगर मैं ठोस हो जाऊं तो उसके स्वर बहने बन्द हो जाएंगे। चूंकि मैं पोली हूं, भीतर ठोस नहीं हूं, उसके स्वर मुझसे बह पाते हैं। हम जितने ठोस हैं उतने ही उसके स्वर हमारे भीतर से नहीं बह पाते हैं। हम जितने खाली हो जाते हैं रिक्त अपने में से, अपने प्रयास से, उतने ही उसके स्वर हमारे भीतर बहना शुरू हो जाते हैं। वह तो निरन्तर द्वार पर खड़ा है लेकिन हमारे द्वार बन्द हैं। और अपने ही अहंकार से बन्द हैं। इसलिए यदि अप्रयास में अनायास ही उसकी झलक मिली हो तो यह सूत्र समझ लें। इसमें सारी बात छिपी है। इसमें यह छिपा है कि प्रयास मत करें, छोड़ दें अपने को। उसकी झलकें मिलेंगी और जिस दिन आप पूरा छोड़ देंगे उस दिन वह पूरा मिल जाता है। अपने को हटा दें।

एक और मित्र ने पूछा है, जीवन में दुख ही दुख मालूम होता है। क्या करें? जीवन में सब बुरा बुरा ही मालूम होता है, निराशा और उदासी मालूम होती है, क्या करें?

जीवन में न तो दुख है और न सुख। जीवन को तो जैसा हम देखने में समर्थ हो जाते हैं वह वैसा ही हो जाता है। जीवन तो वैसा ही है जैसी देखने की हमारे पास दृष्टि होती है। हमारे ही बीच इसी जीवन में वे लोग भी जीते हैं जो आनन्द से भरे होते हैं और वे लोग भी जो दुख और अंधकार से। जीवन में यही है। देखने की दृष्टियां भिन्न होती हैं। अगर हमने जीवन में उदासी और अंधकार और दुख और पीड़ाएं देखने की दृष्टि को अर्जित कर लिया है तो जीवन के आनन्द से हम वंचित रह जायेंगे तो कोई आश्चर्य नहीं है।

मैंने सुना है एक मां अपने बच्चे से परेशान थी। वह किसी भी तरह के भोजन में कोई रुचि न लेता था। और हर तरह के भोजन में कुछ न कुछ आलोचना और शिकायत खड़ी कर देता था। वह किसी तरह के वस्त्रों में कोई न कोई भूलचूक खोज लेता था। वह किन्हीं मित्रों में भी कोई रुचि न लेता था और हर मित्र में कोई न कोई खराबी खोज लेता था। उसकी मां घबड़ा गयी थी। उसका भविष्य सुखद न था। जिसकी दृष्टि हर जगह धूमिल और अंधकारपूर्ण पक्ष को लेने की हो उसका जीवन नर्क हो जायेगा। वह घबड़ा गयी। वह उसे एक मनोवैज्ञानिक के पास ले गयी। सबसे बड़ा प्रश्न तो उसके भोजन का था। क्योंकि वह भोजन करना ही बन्द कर दिया था और हर चीज में—दूध में उसे बास

आती थी, रोटियां उसे पसन्द न थीं। इस चीज में यह खराबी थी, उस चीज में वह खराबी थी। और सब तो ठीक था लेकिन भोजन के बिना अब तो जीना भी कठिन हो गया। वह एक बड़े मनोवैज्ञानिक के पास ले गयी। उस मनोवैज्ञानिक की बड़ी ख्याति थी। वह न मालूम कैसे कैसे विक्षिप्त लोगों को भी ठीक कर चुका था। यह तो एक छोटा सा बच्चा था, अभी जीवन की शुरुआत थी। इसे ठीक करने में थोड़ी सी कठिनाई होने वाली है। उस मनोवैज्ञानिक ने उस बच्चे को बहुत तरह से समझाया। भोजन की विधियाँ समझायीं, फायदे समझाये। बहुत अच्छी-अच्छी मिठाई बनवायीं, उस बच्चे के सामने रखीं, लेकिन उसने कोई न कोई आलोचना निकाल दी। आलोचक था जन्मजात। कोई न कोई बात निकाल दी। इसमें यह भूल है, इसका रंग मुझे पसन्द नहीं है, इसकी बास मुझे पसन्द नहीं है। इसे खाऊंगा तो वमन हो जायेगा। मनोवैज्ञानिक भी थोड़ा घबड़ाया लेकिन उसकी मां के सामने यह बताना नहीं चाहता था कि मैं घबड़ा गया हूं, छोटे बच्चे से। आखिर उसने उसी से पूछा, फिर तू ही बता, इस जमीन पर तुझे कोई भी चीज खाने जैसी लगती है? उसने कहा, हां, मैं केंचुए खाना पसन्द करता हूं। वह भी घबड़ाया, माँ भी घबड़ायी। केंचुए—बरसा में बाहर, बरसा के दिन थे और केंचुए बाहर थे। मनोवैज्ञानिक उससे हारना नहीं चाहता था। उसने सोचा कि शायद यह केंचुए खाने की बात कहकर मुझे डराना भर चाहता है, खायेगा कैसे? उस बच्चे से हारना नहीं चाहता था। वह बाहर गया और एक प्लेट में दस-पन्द्रह केंचुए वर्षा से उठा कर ले आया। उस बच्चे के सामने रखे। उस बच्चे ने कहा, ऐसे नहीं, मैं तले हुए केंचुए खाना पसन्द करूंगा। आपको शर्म नहीं आती? गैर तली हुई चीज मुझे देते हैं? नहीं हारना चाहता था वह मनोवैज्ञानिक। वह बिचारा गया, इन केंचुओं को तल कर लाया। उसके प्राण खुद घबड़ा रहे थे कि यह क्या कर रहा है लेकिन उस बच्चे को वह चाहता था किसी भी तरह निकटता में ले ले, घनिष्टता बन जाय। उसकी कोई माँग पूरी हो जाय तो शायद वह मेरी बातें समझ सके। वह केंचुए लेकर आया, उस बच्चे ने कहा, इतना नहीं मैं केवल एक केंचुआ खाना पसन्द करूंगा। वह बाहर गया, सारे केंचुए फेंककर एक केंचुआ ले आया। उसके सामने प्लेट को रखा और कहा, लो खाओ। उसने कहा क्या मैं अकेला खाऊंगा, आधा आप खाइये। नहीं हारना चाहता था वह,

केंचुआ खाने का जरा भी मन नहीं था। प्राण घबड़ाये। लेकिन उस बच्चे को जीतना जरूरी था तो उसने आधा केंचुआ खाया किसी तरह आंख बन्द करके। और तब उसने बड़े गुस्से से उससे कहा क्योंकि उसने केंचुए को छिपा दिया था। उस बच्चे से कहा, अब खाओ। बच्चा रोने लगा, आपने मेरा हिस्सा खा लिया। उस मनोवैज्ञानिक ने हाथ जोड़े। उसकी मां से कहा, यह लाइलाज है। इसका इलाज करना बहुत मुश्किल है। इसे दिखायी नहीं पड़ता कुछ, सिवाय शिकायत के।

हममें से भी बहुत लोग हैं जिन्हें जीवन में सिवाय शिकायत के और कुछ भी दिखायी नहीं पड़ता। जीवन का कसूर नहीं है इसमें, हमारा ही कसूर है। हमारे देखने का ढंग गलत है, हमारी दृष्टि भूल भरी है। एक आदमी चाहे तो गुलाब के फूल के एक पौधे के साथ खड़ा होकर देख सकता है, ईश्वर की निन्दा कर सकता है। क्रोध से भर सकता है, दुख और चिन्ता से। कैसी है यह दुनिया, मुश्किल से एकाध फूल लगता है और हजार कांटे होते हैं। हजार कांटों में एक फूल के लिए कौन खुश है। कोई देख सकता है कि हजारों कांटे हैं, और एक फूल है, इसमें खुशी की बात क्या है। लेकिन दूसरा व्यक्ति यह भी देख सकता है कि कितनी अद्भुत है यह दुनिया कि जहां हजार कांटे लगते हैं वहां भी एक फूल पैदा होने की संभावना है। कोई ऐसा भी देख सकता है। और इस देखने के ऊपर निर्भर करेगा उनके पूरे जीवन का ढांचा, उनके पूरे जीवन की गतिविधि। कोई आदमी देख सकता है सूरज से चमकता हुआ एक दिन होता है और दोनों तरफ दो अंधेरी रातें होती हैं। और तब उसे लगेगा, दो अंधेरी रातें और बीच में छोटा सा प्रकाश भरा दिन। कैसी बुरी है यह दुनिया। और कोई यह भी देख सकता है, दो चमकते हुए दिन के बीच में छोटी-सी अंधेरी रात होती है, कितनी भली है यह दुनिया। यह हमारे देखने पर निर्भर रहता है।

क्या हम जीवन के प्रकाश व उज्ज्वल पक्ष को देखने को उत्सुक हुए हैं? या कि उसके अन्धकार के पक्ष को? असल में हमारी आदत अजीब है यह।

एक प्रोफेसर अपनी कक्षा में अपने बच्चों को कोई बात समझा रहा था। पीछे एक ब्लेक बोर्ड था। उसने उस पर बड़े कागज, सफेद कागज का टुकड़ा चिपकाया। उस कागज पर छोटा सा एक काला बिंदु बनाया और फिर अपने विद्यार्थियों से पूछा, तुम्हें कुछ दिखायी पड़ता है यहां क्या है? हर विद्यार्थी ने हाथ

उठा दिये। सभी को दिखायी पड़ रहा था। और हरेक से उसने पूछा, क्या तुम्हें दिखायी पड़ता है। विद्यार्थियों ने कहा, एक छोटा सा काला बिन्दु दिखायी पड़ता है। पूरी कक्षा में पूछने के बाद वह जोर से हंसने लगा। उसने कहा, मैं हैरान हूं, इतना बड़ा यह सफेद कागज किसी को दिखायी नहीं पड़ता ? उस कागज पर बना हुआ छोटा सा काला बिन्दु सबको दिखायी पड़ता है। इतना बड़ा सफेद कागज लगा है, किसी को भी दिखायी नहीं पड़ता है। एक विद्यार्थी न था उस कक्षा में जिसने यह कहा होता कि बोर्ड पर सफेद कागज दिखायी पड़ रहा है। नहीं सफेद कागज पर काला बिन्दु सबको दिखाई पड़ रहा है।

हम सारे लोग भी जीवन को इसी तरह देखते हैं। उसके फूल हमें नहीं दिखायी पड़ते, कांटे दिखायी पड़ते हैं। उसकी शुभ्रता हमें दिखायी नहीं पड़ती है उसकी कालिमा हमें दिखायी पड़ती है। उसका प्रेम हमें नहीं दिखोयी नहीं पड़ता है, उसकी घृणा दिखायी पड़ती है। उसका आनन्द नहीं दिखायी पड़ता है, उसका दुख दिखायी पड़ता है। और तब हम इसको संग्रह करते चले जाते हैं फिर सारा चित्त हमारा इस तरह निर्मित हो जाता है कि फिर हम इसी को खोज पाते हैं, इसी को देख पाते हैं। और तब अगर जीवन नर्क हो जाता हो तो आश्चर्य क्या ?

जीवन स्वर्ग भी हो सकता है।

स्वर्ग और नर्क मनुष्य के जीवन को देखने के दृष्टिकोण हैं। न तो नर्क कहीं नीचे है, और न कहीं स्वर्ग ऊपर है। मनुष्य की दृष्टि में वे छिपे हैं। कैसे हम देखते हैं। यदि सुख पाना है तो जीवन में अन्धेरी रातों को खोजें और अगर आनन्द की तरफ आंखें उठानी हैं तो जीवन में फूल भी खिलते हैं, उनको देखें। जो आप देखेंगे उससे आपकी दृष्टि, देखने की क्षमता, आपका एटीट्यूड निर्मित होता जायेगा। बनता जायेगा। आज अगर आप दिन भर फूल देखेंगे तो कल फूलों को देखने की क्षमता आपकी विकसित हो जायेगी। अगर आज आप दिन भर कांटे देखेंगे तो कल सुबह से ही कांटों से मिलना सुनिश्चित है। रोज रोज, पल पल जब हम जी रहे हैं तब जीवन प्रकाश कहीं हो, उसे खोजकर हमें जीना चाहिए। आनन्द कहीं हो, उसकी तलाश में जीना चाहिए।

एक फकीर एक रात अपने घर में बैठा हुआ था। कोई बारह बजे होंगे। कुछ पत्र लिखता था और तभी किसी ने जाकर धक्का दिया। द्वार अटके थे, जिसने धक्का दिया था वह

भीतर आ गया। जो आदमी भीतर आया था उसको कल्पना भी न थी कि फकीर जागता होगा। वह उस गांव का सबसे प्रमुख चोर था। लेकिन फकीर जागा हुआ था, तो वह घबड़ाया। उसने छुरा बाहर निकाल लिया था, समझा कि कोई झगड़े झंझट की स्थिति बनेगी। लेकिन फकीर ने कहा, मेरे मित्र, छुरा भीतर रख लो। तुम किसी बुरे आदमी के घर में नहीं आये हो कि छुरे की जरूरत पड़े। छुरा अन्दर कर लो और बैठ जाओ, जरा मैं चिट्ठी पूरी कर लूं, फिर तुमसे बात करूं। वह घबड़ाकर बैठ गया। फकीर ने अपना खत पूरा किया और कहा, कैसे आये, इतनी रात ? और इतना बड़ा नगर है, इतनी इतनी बड़ी हवेलियां हैं, इतने इतने बड़े महल हैं और तुमने मुझ गरीब की कुटिया पर ध्यान दिया, कैसे आये ? उस चोर ने कहा, अब आप जब पूछ ही लिये तो बताना जरूरी हो गया है। और शायद आपसे मैं झूठ न बोल सकूं। मैं चोरी करने आया हूं। फकीर ने ठण्डी सांस ली और उसने कहा, बड़े नासमझ हो। भले मानुष, एकाध दो दिन पहले खबर तो कर देते तो मैं कुछ इन्तजाम कर आता। यह फकीर की झोपड़ी है, यहां हमेशा कुछ मिल जाय यह तो बहुत मुश्किल है। और मुझे क्या पता था, आज सुबह ही एक आदमी कुछ रुपए भेंट करने आया था और मैंने वापस कर दिये। तो मेरा अंदाज होता तो मैं रोक कर रखता। आगे जब भी आप—ऐसा कभी मत करना कि बिना कहे, बिना खबर किये आ जाना। थोड़े से रुपए पड़े हैं, नाराज न होओ तो मैं तुम्हें दे दूं। दस रुपए उसके पास थे। उसने कहा, उस आले पर दस रुपए रखे हैं, वह तुम ले लो। वह चोर तो घबड़ाया हुआ था, उसकी समझ के बाहर थी ये बातें। चोरी उसने बहुत की थीं, लेकिन ऐसा आदमी मिला न था। वह जल्दी से घबड़ाहट में दस रुपए उठाया तो उस फकीर ने कहा, इतनी कृपा कर सकोगे कि एक रुपया छोड़ दो। सुबह-सुबह मुझे जरूरत भी पड़ सकती है। एक रुपया मुझ पर उधारी रही, कभी न कभी चुका दूंगा। उस चोर ने जल्दी से रुपया रखा, वह भागने लगा। उस फकीर ने कहा, मेरे मित्र, रुपए तो कल खत्म हो जायेंगे, उन पर इतना भरोसा मत करना। कम से कम मुझे धन्यवाद तो देते जाओ। धन्यवाद बाद में भी काम कर सकता है। उस चोर ने उसे धन्यवाद दिया और वह चला गया। बाद में वह पकड़ गया। उस पर और चोरियां भी थीं, यह चोरी भी थी। इस फकीर को भी अदालत में जाना पड़ा। वह चोर

घबड़ाया हुआ था कि अगर इस फकीर ने जरा भी कह दिया कि यह आदमी चोरी करने आया था तो और किसी गवाही की कोई जरूरत नहीं है। यह जाना माना आदमी था। इसकी बात पर्याप्त प्रमाण हो जायेगी। वह डरा हुआ खड़ा था। मजिस्ट्रेट ने पूछा, उस फकीर को, आप इस आदमी को पहचानते हैं? उस फकीर ने कहा, पहचानने की बात कह रहे हैं? यह मेरा मित्र है। और मित्र तो दुख में पहचाना जाता है, जो अपने पर भरोसा करे वही तो मित्र है। एक रात जब इस व्यक्ति को जरूरत पड़ गयी थी तो वह किसी महल में नहीं गया, मेरे झोपड़े पर आया। मेरा मित्र है, मुझ पर विश्वास करता है। मजिस्ट्रेट ने पूछा, इसने आपकी कभी चोरी की थी? उसने कहा, कभी भी नहीं। मैंने इसे नौ रुपये भेंट किये थे और एक रुपया अब भी इसका मेरे ऊपर उधार है जो चुका नहीं पाया हूं। वह मुझे कल चुका देना है। और चोरी का तो सवाल ही नहीं है, मैंने इसे रुपये दिये थे, इसने मुझे धन्यवाद दे दिया था। बात समाप्त हो गयी थी।

वह चोर तीन वर्ष बाद फिर आया और उस फकीर के झोपड़े पर पहुंच गया और उसने कहा, उस दिन तुमने कहा था, मित्र हूं, और इन तीन वर्षों में निरन्तर सोचता रहा, तुम्हारे अतिरिक्त मेरा कोई भी मित्र नहीं है और उस दिन तो रात आया था जाने को, अब न जाने को आ गया हूं। अब नहीं जाऊंगा।

फकीर ने कहा, मैंने तो कुछ भी नहीं दिया था। उस चोर ने कहा, तुम पहले आदमी हो जिन्दगी में जिसने मेरे भीतर कुछ अच्छाई दी। तुम पहले आदमी हो जिसने मेरी जिन्दगी का कोई प्रकाश व उज्ज्वल पहलू देखा। तुम पहले आदमी हो जिसने मेरी आत्मा को चुनौती दे दी। तुम पहले आदमी हो जिसने मेरे भीतर के सारे संगीत को खींच कर बाहर ला दिया और तो जो भी मुझे मिला था उसने मेरा अन्धेरा पहलू देखा था। और जब सारी दुनिया मुझमें अन्धकार देखती थी तो मैं धीरे-धीरे उसी अन्धकार में डूबता चला गया और उसी अन्धकार को मैंने स्वीकार कर लिया था। तुमने मेरे जीवन को चुनौती दे दी। तुमने पहले दफे मुझमें ख्याल पैदा कर दिया कि मैं भी एक अच्छा आदमी हो सकता हूं।

तो जब हम जीवन में आनन्द को, शुभ को, मंगल को, प्रकाश को देखना शुरू करते हैं तो न केवल हमारी दृष्टि आनन्द से भर जाती है

बल्कि हम जहां भी मंगल और शुभ को देखते हैं वहां भी हम चुनौती खड़ी कर देते हैं, उस व्यक्ति के लिए भी कि उसके भीतर कुछ शुभ का आविर्भाव हो जाय और विकास हो जाय। यह दुनिया इतनी बुरी दिखायी पड़ रही है, इस कारण नहीं कि लोग इतने बुरे हैं बल्कि इस कारण कि सभी लोगों को बुराई के अतिरिक्त देखने की और कोई आदत नहीं है। और अगर इतने लोग यहां बैठे हैं, सभी लोग मुझमें बुराई देखने लगें और फिर सभी मेरी बुराई की चर्चा करने लगें और सभी मेरे अन्धकार को उघाड़ने लगें तो मै कितनी देर— कितनी देर उनके खिलाफ खड़ा रह सकूंगा। धीरे-धीरे वे सब मिलकर मुझे विश्वास दिला देंगे कि मैं बुरा आदमी हूं। वे धीरे-धीरे मुझे इतने क्रोध से भर देंगे कि मुझे ऐसा लगेगा, ठीक है तुम जो कहते हो मैं उससे ज्यादा बुरा हूं। मेरे भीतर शुभ के आविर्भाव की सारी सम्भावना समाप्त हो जायेगी।

तिब्बत के एक गांव में मारपा नाम का एक साधु था। एक आदमी ने आकर मारपा को कहा, आप हमारे गांव चलिए, कुछ दिन वहां ठहरिये। मारपा ने कहा, उस गांव से जहां से तुम आये हो एक आदमी है जो बांसुरी बहुत अच्छी बजाता है। सुना है कभी, देखा है उसे ? वह आदमी बोला, वह क्या बांसुरी बजायेगा ! मारपा ने कहा, मैं तुम्हारे गांव न जाऊंगा। एक दूसरा आदमी उसके जाने के बाद आया और उसने कहा, आप हमारे गांव चलें और यह चतुर्मास वहीं ठहर जायें। मारपा ने कहा, मैंने सुना है, तुम्हारे गांव में एक आदमी है, जो बांसुरी बजाता है। बहुत अच्छी बांसुरी बजाता है। सुना है कभी उसे ? उस आदमी ने कहा, इतना बेईमान है, इतना चोर है, इतना निपट अनैतिक है, वह क्या बांसुरी बजायेगा ! उसकी बांसुरी कौन सुनने जायेगा ! मारपा ने कहा, रहने दो, तुम्हारे गाँव मैं न जा सकूंगा। और तीसरा आदमी उस सांझ को आया, जिसका निमन्त्रण उसने स्वीकार कर लिया। उस तीसरे आदमी से उसने कहा कि मैंने सुना है कि तुम्हारे गांव में वह बांसुरी बजाने वाला बेईमान और चोर अनैतिक आदमी है ? उसने कहा, मुझे पता नहीं, लेकिन वह बांसुरी इतनी अच्छी बजाता है कि मैं मान नहीं सकता कि वह चोर हो सकता है। उसने कहा मैं तुम्हारे गांव चलता हूं। तुम्हारे गांव में जिन्दगी की अच्छाइयां देखने वाले लोग हैं। जिस गांव में अच्छाइयां देखने वाले लोग हैं—वे गांव जमीन

पर स्वर्ग बन जाते हैं। हमने अपनी जमीन को नर्क बना लिया है। दुख बाहर नहीं है, हमारी दृष्टि में है। और आनन्द भी बाहर नहीं है, वह भी हमारी दृष्टि में है। इसलिए बाहर मत थोपें अपने दुख को। खुद की दृष्टि को समझें, खोजें और उस दृष्टि में ही आपको कारण मिल जायेंगे। और बाहर की दुनिया अगर नर्क हो तब तो फिर कोई आदमी कभी आनन्दित नहीं हो सकता है। क्योंकि बाहर की दुनिया को बदलने की सामर्थ्य किसमें है। लेकिन अगर भीतर की दृष्टि में नर्क हो तब यह हमारे हाथ में है कि हम स्वर्ग में प्रवेश कर जायं। क्योंकि भीतर की दृष्टि कोई भी व्यक्ति जब चाहे, अपनी बदल ले सकता है।

इसलिए मैं प्रार्थना करूंगा कि अपनी दृष्टि में खोजें कि दुख कहां है, पीड़ा कहां है। वहां देखें और वहां कारण निष्पक्ष मिल जायेंगे और उन कारणों को बदलना जरा भी कठिन नहीं है क्योंकि कोई भी आदमी दुख में रहने को राजी नहीं है। अगर उसे यह पता चल जाय कि मैं ही अपने दुख का सृष्टा हूं तो उसके बदलने में कोई कठिनाई नहीं रह जाती। यह पता ही नहीं होता कि मैं ही अपने दुख का सृष्टा हूं। समझते हैं कि बाकी सब लोग, बाकी दुनिया में दुख है और इसलिए फिर हम पीड़ा में घुलते हैं, घुलते चले जाते हैं; जहां कोई मार्ग नहीं मिलता। मार्ग है—स्वयं में मार्ग है। इस तरफ थोड़ा विचार करेंगे तो बात दिखायी पड़ सकती है।

एक मित्र ने पूछा है, आपने कल कहा था कि आदमी जितना बाहर से सुन्दर होता है उतना ही अन्दर से खराब होता है। इसके बारे में हमें आपको क्या समझना चाहिए?

बहुत ठीक बात पूछी है। लेकिन मेरी बात समझ नहीं पाये। मैंने यह नहीं कहा कि बाहर से जो सुन्दर होता है वह भीतर से खराब होता है। मैंने यह कहा कि बाहर से सौन्दर्य की खोज भीतर की कुरूपता को छिपाने के लिए है। इन दोनों बातों में बड़ा फर्क है। मैंने यह नहीं कहा कि बाहर से जो कुरूप होता है वह भीतर से सुन्दर होता है। न मैंने यह कहा कि बाहर से जो सुन्दर होता है वह भीतर से कुरूप होता है। मैंने कहा यह है कि बाहर के सौन्दर्य की खोज भीतर की कुरूपता को छिपाने का उपाय है। उससे कुरूपता छिप जाती है, लेकिन जो भीतर के जीवन को सुन्दर बना ले वह बाहर से तो अपने आप सुन्दर हो जाता है। बाहर के सुन्दर हो जाने में कोई कठिनाई नहीं है। जिसके भीतर प्रकाश जल जाय

उसके तो बाहर भी प्रकाश फैल जाता है। जिसके भीतर सुगन्ध आ जाय उसके बाहर भी सुगन्ध आ जाती है।

लेकिन भीतर की दुर्गन्ध दबाने के लिए जो बाहर की सुगन्ध खोजता है वह भूल है। वह मैंने आपसे कहा था। मैं तो सब तरह के सौन्दर्य का प्रेमी हूं। लेकिन जिस सौन्दर्य के पीछे कुरूपता छिपी हो वह सौन्दर्य खतरनाक है। इसलिए नहीं कि वह सौंदर्य है, बल्कि इसलिए कि वह एक बड़ी कुरूपता को छिपाने का आवरण बन गया है और वह कुरूपता उसके कारण छिपी रह जायेगी।

एक बहुत पुरानी कथा है—पृथ्वी बन गयी थी और सारे लोग उसमें आबाद हो गये थे और तब अन्त में परमात्मा ने सौंदर्य को और कुरूपता को बनाया। सौंदर्य और कुरूपता की देवियां आकाश से पृथ्वी पर उतरीं। आकाश से पृथ्वी तक आने में बहुत धूल धमाल उनके कपड़ों पर पड़ गई। वे एक तालाब के किनारे रुकीं और उन्होंने कहा हम स्नान कर लें। उन दोनों ने रथ को छोड़ दिया और वे तालाब पर स्नान करने को उतर गयीं। सौंदर्य की देवी तैरती हुई आगे निकल गयीं। शायद कुरूपता की देवी यह प्रतीक्षा ही कर रही थी कि वह थोड़ा आगे निकल जाय। वह शीघ्र बाहर निकली और उसने सौंदर्य की देवी के कपड़े पहने और भाग खड़ी हुई। सौंदर्य की देवी ने देखा, कुरूपता की देवी उसके कपड़े पहनकर भाग गयी है। वह बाहर आयी, वह नग्न खड़ी थी, सुबह होने को करीब थी। गांव के लोग जगने लगे थे। सिवाय इसके कोई रास्ता न रहा कि वह कुरूपता के कपड़े पहन ले। नंगे रहना बड़ा मुश्किल था। उसने वह कपड़े पहने। वह सौंदर्य की देवी कुरूपता के कपड़े पहनकर बाहर आई, कुरूपता की देवी सुनते हैं अब तक भागी चली जा रही है, भागती ही चली जा रही है।

कुरूपता सौंदर्य के वस्त्र पहन लेना चाहती है ताकि छिप जाय। मैंने यह कहा, ऐसे बाह्य सौंदर्य की खोज में ख्याल करना, कहीं भीतर की कुरूपता को छिपाने का आग्रह तो नहीं है। अगर है तो भीतर की कुरूपता ही मिटाने की कोशिश करना ढांपने की नहीं। वह मिट जायेगी तो भीतर तो सुन्दर होगा। उस सुन्दर की किरणें बाहर फैल जायेंगी। जीवन सुन्दर हो, सर्वाङ्ग सुन्दर हो, यह कौन न चाहेगा। लेकिन जीवन भीतर से बाहर की ओर सुन्दर हो, बाहर से केवल सुन्दर न हो क्योंकि बाहर से सौंदर्य फिर बहुत खतरनाक हो जाता है, आत्मघात हो जाता है, आत्मवंचना हो जाती है। और बाहर

के सौंदर्य से मेरा मतलब आप समझते होंगे। अगर ज्ञान की बात हो तो हम बाहर से शब्द सीख लेते हैं और भीतर अज्ञान छिपा लेते हैं। अज्ञान कुरूप है। सुन्दर सुन्दर शब्द सीख लेते हैं। शास्त्रों के वचन सीख लेते हैं जो ऊपर से चिपक जाते हैं। भीतर? अज्ञान खड़ा होता है। अगर नीति का सवाल हो तो भीतर वासनाएं सरकती रहती है, ऊपर हम ब्रह्मचर्य के व्रत ले लेते हैं। भीतर सेक्स खड़ा होता है, ऊपर ब्रह्मचर्य के वस्त्र पहन लेते हैं। भीतर क्रोध होता है ऊपर हम शांत मुख मुद्राए सीख लेते हैं। भीतर आंसू होते हैं, ऊपर हम मुस्कुराहट चिपका लेते हैं। ऐसा हम जीवन को धोखा दे देते हैं। भीतर कुछ होता है, बाहर हम कुछ हो आते हैं और इससे इतने तनाव, इतना टेंशन पैदा होता है क्योंकि हम प्रतिक्षण भीतर कुछ होते हैं जो हम असली हैं और बाहर हम कुछ होते हैं जो हम नकली हैं। और इन दोनों के बीच एक द्वंद्व, एक कांफ्लिक्ट चलती रहती है। जो जीवन के सारे आनंद को क्षीण कर देती है, सारी शक्ति को पी जाती है।

भीतर से क्रांति होनी चाहिए, बाहर से नहीं। भीतर से कुछ बदल आनी चाहिए, बाहर से नहीं। भीतर की बदल बाहर की बदल बन जायेगी लेकिन बाहर की बदलाहट भीतर की बदलाहट नहीं बन सकती। क्योंकि भीतर हैं हमारे प्राण, भीतर है हमारा केन्द्र, भीतर हैं हमारी जड़ें। जो उन जड़ों को भूल जाता है और पत्तों की फिक्र करता है उसका वृक्ष आज नहीं कल सूख जायेगा। और तब फिर उसे प्लास्टिक के पत्ते लाकर बाहर लगा लेने पड़ेंगे। और प्लास्टिक के फूल बाजार से खरीद लाने पड़ेंगे। पहले कागज के फूल मिलते थे, अब उनसे भी ज्यादा मजबूत नकली फूल मिलने शुरू हो गये हैं—प्लास्टिक के उनको लगाकर घर में हम बैठे रह जा सकते हैं। धोखा हो सकता है किसी को फूलों का, लेकिन प्लास्टिक का फूल भी फूल है कोई? ऐसे ही हमने जिन्दगी में प्लास्टिक के फूल खोज लिये हैं। मैंने जो कहा—मैं फूलों का दुश्मन नहीं हूं। फूलों से मुझे प्रेम है। आपके घर में फूल हैं इससे ज्यादा खुशी की बात क्या है! लेकिन आप प्लास्टिक के फूलों को फूल समझ रहे हैं तो बड़ी गड़बड़ है। प्लास्टिक के फूलों के मैं विरोध में हूं। इसलिए विरोध में हूं कि वह नकली सिक्के, खोटे सिक्के, असली सिक्कों को बाहर कर देते हैं बाजार से। झूठे फूल में असली फूलों की हत्या हो जाती है। झूठा आचरण सच्चे आचरण के जन्म में बाधा बन

जाता है। और जब हम इस तरह उत्सुक हो जाते हैं फूल-पत्तों को सम्हालने में और जड़ों को भूल जाते हैं तो सारी गड़बड़ हो जाती है। इस जीवन में भी यही गड़बड़ हो गयी है।

एक छोटी-सी घटना आपको कहूं— माओत्से तुंग छोटा था। उसकी मां की एक बहुत खूबसूरत बगिया थी। उस इलाके में उसकी मां से ज्यादा अच्छे फूल किसी की बगिया में नहीं आते थे। बड़े प्रेम से उसने उन फूलों को सींचा था और बड़े प्रेम से उनको सम्हाला था। प्रेम पुरस्कार लाता था और फूल बहुत अद्भुत होते थे। फिर वह बूढ़ी मां बीमार पड़ गयी। तो उसे अपनी बीमारी की चिन्ता न थी, न अपनी मौत की। फिक्र थी उसे अपने फूलों की, जो कुम्हला न जायें। अपने पौधों की जो मुर्झा न जायें। माओ छोटा था, उसने कहा, मां तुम घबराओ मत। मैं इनकी फिक्र कर लूंगा। पन्द्रह दिन तक उसकी मां बीमार थी और माओ बगीचे में मेहनत करता रहा। रात सोया नहीं, रात-दिन मेहनत करता रहा लेकिन कोई भी मेहनत कारगर न हुई, फूल सूखते गये। पौधे कुम्हलाते गये। घबड़ाया कि बात क्या थी। पन्द्रह दिन बाद मां जब थोड़ी ठीक हुई, वह बाहर आयी तो रोने लगी। माओ भी रोने लगा। माओ ने कहा, मैंने पूरी मेहनत की थी, न मालूम क्या हो गया। ये फूल तो सूख गये हैं, पौधे कुम्हला गये हैं। उसकी मां ने कहा, तुम तो दिन-रात बगीचे में रहते थे, करते क्या थे? उसने कहा कि मैं एक-एक पत्ते की धूल झाड़ता था, एक-एक फूल पर पानी छिड़कता था, पता नहीं क्यों पौधे सूखते गये! उसकी मां हंसने लगी। उसने कहा, पागल हो तुम। फूलों में और पत्तों में थोड़े ही प्राण होते हैं, प्राण होते हैं जड़ों में जो दिखायी नहीं पड़तीं। उसने जड़ों को पानी ही नहीं दिया, वह फूल-पत्तों को सम्हालता रहा। उनको झाड़ता रहा, उनकी धूल निकालता रहा, उन पर थोड़ा-थोड़ा पानी छिड़कता रहा। छोटा बच्चा था, जड़ें उसको दिखायी भी न पड़ीं। जड़ों का उसने कोई ख्याल नहीं किया। जो दिखायी नहीं पड़ता है उसका ख्याल भी कौन करता है? जो दिखायी पड़ता है उसी का हम ख्याल करते हैं। उसे पता भी न था कि जमीन के नीचे जड़ें हैं, जिनमें प्राण हैं। और अगर उनको पानी मिल जाय तो फूल-पत्तों को अपने आप मिल जायेगा। लेकिन फूल-पत्तों को पानी देने से जड़ों को पानी नहीं मिल सकता।

वह तो बच्चा था लेकिन हम

सब भी जिन्दगी के बगीचे में ऐसे ही बच्चे हैं। फूल-पत्तों को सम्हालते हैं। जड़ों की हमें कोई फिक्र नहीं। बल्कि हम पूछते हैं, जो चीज दिखायी नहीं पड़ती वह है कहां ?

मनुष्य के भीतर जो चेतना है वह उसकी जड़ है। वहां है रूट। मनुष्य की जो आत्मा है वह उसकी जड़ है, वह दिखायी नहीं पड़ती। जड़ें कभी दिखायी नहीं पड़तीं। अदृश्य उनका काम है। वहां जो सम्हाल लेता है, उसके बाहर के जीवन में बहुत फूल आते हैं। बहुत संगीत प्रगट होता है—बहुत सत्य, बहुत संगीत का जन्म होता है। लेकिन भीतर जो जड़ों को भूल जाता है और बाहर के फूल पत्तों में सम्हालने में लग जाता है उसका जीवन मुर्झा जाता है। हम सबका जीवन ऐसे ही मुर्झा जाता है। इस मुर्झायेपन को छिपाने के लिए हम फिर बाजार से फूल खरीद लाते हैं, पत्ते लगा लेते हैं। असली पौधा मर ही जाता है। धीरे-धीरे नकली पत्ते ही और फूल हमारे पास रह जाते हैं। फिर नकली जीवन में आनंद कैसे होगा। फिर नकली और झूठे जीवन में सुवास कैसे आयेगी। फिर नकली और झूठे जीवन में पुलक, थिरक और नृत्य कैसे होगा। नहीं हो सकता। वहां प्राण ही नहीं है तो यह सब कैसे होगा।

इसलिए मैंने कहा, भीतर से सौंदर्य को जगाना, भीतर की कुरूपता को छिपाना मत। इसे मिटाना है इसलिए छिपाना मत। अगर बचाना हो तो छिपा लेना। जिसे हम छिपाते हैं वह बच जाता है। जिसे हम उघाड़ते हैं उसके मिटने की शुरुआत हो जाती है। मैं समझता हूं, मेरी बात ख्याल में आयी होगी। एक छोटा सा प्रश्न और, और अपनी चर्चा मैं पूरी करूंगा।

एक मित्र ने पूछा है कि आपने कहा है माताएं, पत्नी, बहिन इत्यादि अपने प्रिय व्यक्ति को युद्ध में भेजती हैं इसलिए उनका प्रेम झूठा है। परन्तु मेरी समझ से वह त्याग है और उनका देश प्रेम व्यक्ति प्रेम से बढ़कर है। क्या यह सच है ?

प्रेम सिर्फ प्रेम होता है। न तो वह व्यक्ति का होता है, न देश का, न मनुष्य का, न परमात्मा का। जिस हृदय में प्रेम है वह प्रेम किसी तरह की हिंसा और घृणा बरदाश्त नहीं कर सकता। लेकिन हम बहुत होशियार लोग हैं। हम कहते हैं, हम मनुष्यता से प्रेम करते हैं और मनुष्यों की हत्या किये चले जाते हैं। बड़े आश्चर्य की बात है। मनुष्यों को छोड़कर मनुष्यता कहीं है ? कहीं खोजने जाइएगा ह्यूमिनिटी कहीं मिलेगी ? मनुष्यता कहीं मिलेगी ? जहां भी

मिलेगा, मनुष्य मिलेगा, मनुष्यता कहीं भी नहीं मिलेगी। और हम यह कहते हैं कि मनुष्यता को इतना प्रेम करते हैं कि अगर जरूरत पड़े तो हम मनुष्यों की हत्या कर सकते हैं। बड़ी होशियारी की, बड़ी कनिंगनेस की, बड़ी चालाकी की बात है। जिस आदमी के हृदय में प्रेम है उसका कोई द्वेष हो सकता है? उसका कोई द्वेष नहीं हो सकता है क्योंकि प्रेम की कोई सीमा नहीं है। जिस आदमी के हृदय में प्रेम है, सारे देश उसके अपने हैं। वह यह नहीं कह सकता कि हिन्दुस्तान मेरा और पाकिस्तान मेरा नहीं है। उसका प्रेम कोई सीमा नहीं मानेगा। देश प्रेम के नाम पर सारी दुनिया के प्रति हमारी जो घृणा है उसे छिपाने का उपाय करते हैं। जमीन एक है। सारी रेखाएं मनुष्य के बीच पैदा होने वाले कुछ शरारती लोगों की करतूतें हैं। जमीन कहीं भी कटी हुई नहीं है, कहीं भी बंटी हुई नहीं है। जमीन पर कोई देश का बंटवारा धार्मिक नहीं है, राजनैतिक है।

प्रेम का बंटवारा नहीं है यह। यह घृणा का और हिंसा का बंटवारा है और फिर इन सीमाओं पर युद्ध खड़े होते हैं। और हम कहते हैं, हम अपने देश प्रेम के लिए उन सीमाओं पर अपने लोगों की हत्या करवाएंगे और दूसरों की हत्या करेंगे। और वे दूसरी कौम के राजनीतिज्ञ भी यही समझाते हैं कि तुम भी अपने देश प्रेम के लिए मरो और मारो। और देश प्रम के नाम पर अब तक दुनिया में पांच हजार वर्षों में चौदह हजार युद्ध हुए। हर वर्ष तीन युद्ध—चौदह हजार हुए युद्ध, पाँच हजार वर्षों में देश प्रेम के नाम पर। और आदमी कटता है और मरता है लेकिन हम बहुत होशियार हैं। जब भी हमें कोई बुरा काम करना होता है तो हम कोई ऊंचा नारा खोज लेते हैं, देश प्रेम, मनुष्यता का प्रेम। धर्म का प्रेम। निहायत बेवकूफियों को हम अच्छे-अच्छे शब्दों में छिपा लेते हैं। जिस मनुष्य के हृदय में प्रेम है वह किसी भी मूल्य पर हिंसा के लिए राजी नहीं हो सकता है। वह किसी भी मूल्य पर हिंसा के लिए तैयार नहीं हो सकता है। देश की सीमाएं हिंसा लाने वाली सीमाएं हैं। जिस आदमी के हृदय में प्रेम है वह इस बात के पक्ष में होगा कि दुनिया में राष्ट्र नहीं रह जाना चाहिए। वह इस बात के पक्ष में नहीं हो सकता कि राष्ट्र बचना चाहिए। वह इस बात के पक्ष में नहीं हो सकता कि शूद्र और ब्राह्मण और क्षत्रिय और वैश्य बचना चाहिए। वह इस पक्ष में नहीं हो सकता कि हिन्दू-मुसलमान बचना चाहिए। वह इस पक्ष में होगा कि ये सारी सीमाएं

युद्ध लाती हैं, हिंसा लाती हैं इसलिए दुनिया में कोई भी सीमा नहीं रहनी चाहिए। अन्यथा जब चीन का हमला हुआ सारे हिन्दुस्तान में लोग कहते हैं, प्रेम की लहर दौड़ी, लोग इकट्ठे हो गये, लोग संगठित हो गये, एकता आ गयी। और मैं आपसे पूछता हूं, यह प्रेम की एकता है ? या कि घृणा की एकता है ? सामने दुश्मन खड़ा है, उससे नष्ट करने की कामना तीव्रता से पैदा होती है। उससे जूझने की, हत्या की, हिंसा की तीव्र लहर दौड़ती है, हम इकट्ठे हो जाते हैं। वह इकट्ठा होना प्रेम का इकट्ठा होना नहीं है। आज तक दुनिया में प्रेम पर कोई संगठन नहीं बना। सब संगठन घृणा की हैसियत से हैं। फिर वह घृणा हट जाती है, युद्ध हट जाता है, हम फिर अपनी जगह खड़े हो जाते हैं और सारी एकता विलीन हो जाती है। फिर महाराष्ट्रियन गुजराती से लड़ने लगता है, फिर हिन्दू मुसलमान से लड़ने लगता है, फिर दक्षिण भारतीय उत्तर भारतीय से लड़ने लगता है। हिन्दी बोलने वाला गैर हिन्दी बोलने वाले से लड़ने लगता है।

हमारे भीतर प्रेम नहीं है, इस सत्य को मनुष्यता जिस दिन स्वीकार कर लेगी कि अभी हम प्रेम को जन्म नहीं दे पाये, उस दिन मनुष्य के जीवन में एक सौभाग्य का उदय होगा। क्योंकि तब हम सोच सकेंगे कि कैसे प्रेम को जन्म दें और जब तक हम इस इलूजन में, इस भ्रम में रहेंगे कि प्रेम हमारे भीतर है तब तक तो फिर प्रेम को जन्म देने के विज्ञान पर सोचा विचारा नहीं जा सकता।

कुछ और बहुत प्रश्न हैं वह मैं कल सुबह आपसे बात करूंगा। मेरी बातों को इतनी प्रेम और शांति से सुना उससे बहुत अनुग्रहीत हूं। अन्त में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

संकलन : *स्वामी नरेन्द्र बोधिसत्व*
पूना (महा०)

काम-वासना की अन्तर्यात्रा

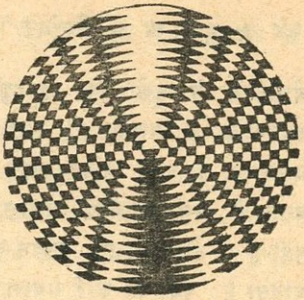

□

मैडम ब्लैवट्सकी की महान पुस्तक "समाधि के सप्तद्वार" पर आनन्दशिला साधना शिविर में भगवान श्री रजनीश द्वारा दी गई प्रवचन-माला का एक अंश युक्रांद के पाठकों को यहां भेंट है।

—सं०

□

सारी वासनाओं के मूल में काम-वासना है। वासना का रूप कोई भी हो, गहरे में खोजेंगे तो काम को ही पाएंगे। हिन्दुओं ने तो जगत के सृजन में ही काम को मूल माना है। सारी सृष्टि काम-वासना का ही फैलाव है। चाहे कोई धन चाहता हो, चाहे कोई पद चाहता हो; चाह मात्र अपने मौलिक रूप में कामना है, काम-वासना है। धन भी इसीलिए चाहा जाता है; पद भी इसीलिए चाहा जाता है। ये प्रकारान्तर से अलग-अलग द्वारों से एक ही वासना की तरफ ले जाते हैं।

तो जिसने काम-वासना पर विजय पा ली, उसने सभी वासनाओं पर विजय पा ली। काम-वासना क्या है?

अगर हम वैज्ञानिकों से पूछें, तो वे कहते हैं कि आदमी के जीवन में दो बातें बहुत आधारभूत हैं। एक तो जीवन बचना चाहता है, सरवाइव करना चाहता है। जीवन नष्ट नहीं होना चाहता है। जीवैषणा है कि मैं जीऊं, अकारण; इसका कोई कारण नहीं है। अगर कोई आप से पूछे, आप क्यों जीना चाहते हैं, तो आप कोई कारण नहीं बता सकेंगे। जीना चाहते हैं, यह अकारण है, बस ऐसा है। यह वैसे ही अकारण है जैसे सौ डिग्री पर पानी भाप बन जाता है, नब्बे डिग्री पर बनने में क्या अड़चन थी, या एक सौ दस डिग्री पर बनता तो क्या हर्ज था, अगर हम

वैज्ञानिक से पूछें कि हाइड्रोजन आक्सीजन से मिलकर ही पानी क्यों बनता है, तो कोई उत्तर नहीं है। बनता है; क्यों का कोई सवाल ही नहीं है। ठीक ऐसे ही जीवन जीना चाहता है; क्यों का कोई सवाल नहीं है। जो भी है, वह मिटना नहीं चाहता है। होने में ही बने रहने की कामना छिपी है।

इस कामना के दो रूप हो जाते हैं। आप होना चाहते हैं, रहना चाहते हैं, बचना चाहते हैं। अमरत्व की आकांक्षा है; न मिटें, ऐसा गहरे में छिपा है। इसलिए आदमी अपनी सब तरह से अपनी सुरक्षा करता है। लेकिन व्यक्ति की मृत्यु तो होगी। कितना ही उपाय हो, कितनी ही सुरक्षा हो, व्यक्ति मरेगा। क्योंकि व्यक्ति का जन्म होता है। लेकिन व्यक्ति के भीतर जो जीवन है, वह बच सकता है। आप की लहर मरेगी, लेकिन आपके भीतर जो सागर है जीवन का वह बच सकता है। काम-वासना उसी जीवन के बचने की चेष्टा है। आप मिट जाएंगे, लेकिन आपके भीतर से जीवन निकल कर नये रूप ले लेगा। और उसके पहले कि आप मिटें, आप के भीतर जो जीवन की धारा छिपी है, वह नये शरीर खोज लेगी। आप खो जाएंगे, लेकिन आपके कुछ मौलिक अस्तित्व का हिस्सा, आपकी जीवन-धारा का कोई अंश आपके बच्चों में, बच्चों के बच्चों में यात्रा करता रहेगा।

काम-वासना जीवन को हर हालत में बचाने की आकांक्षा का हिस्सा है। ऐसा मनुष्य में ही है, ऐसा नहीं; समस्त जीवन में है। वृक्ष भी अपने बीजों को सुरक्षित भूमि तक पहुंचाने की कोशिश करता है। अगर आप वृक्षों का अध्ययन करें, तो चकित हो जाएंगे। बड़े वृक्ष अपने बीजों को अपने से दूर पहुंचाने की कोशिश करते हैं। क्योंकि अगर बीज वृक्ष के नीचे ही गिर जाएं, तो बड़े वृक्ष के नीचे उनके अंकुरित होने का उपाय नहीं है; उसकी छाया में वे मर जाएंगे। आपने सेमल का फूल देखा है? आपने कभी सोचा न होगा कि बीज में सेमल की रुई क्यों चिपकी होती है! उस वृक्ष की यह कोशिश है कि रुई के कारण हवा के झोंके में बीज दूर चला जाए। वह नीचे गिरेगा, तो नष्ट हो जाएगा। बीज को दूर पहुंचाने की कोशिश है—वह जो सेमल की रुई है। बीज खुद न उड़ सकेगा, रुई के सहारे उड़ जाएगा; दूर गिरेगा कहीं जाकर जहां अंकुरित हो सकेगा। और इसलिए एक वृक्ष करोड़ों बीज पैदा करता है कि एक व्यर्थ चला जाएगा, दो व्यर्थ चले जाएंगे, लेकिन करोड़ों बीजों

में से अगर एक भी अंकुरित हो गया तो जीवन पल्लवित होता रहेगा।

मैं एक मछली की जाति के संबंध में कभी पढ़ रहा था। उस मछली का जीवन बहुत थोड़ा है! लेकिन अपने जीवन में वह मछली कोई दस करोड़ अंडे देती है। दस करोड़ अंडे! और मछली के अंडों का जीवन बड़ा संकटपूर्ण है। दस करोड़ अंडों में से दो ही मछलियां पैदा हो पाती हैं। आदमी के भीतर भी इतने ही बीज पैदा होते हैं। एक पुरुष चार-पांच अरब बच्चों को जन्म दे सकता है। एक संभोग में लाखों जीवाणु उपयोग में आते हैं, जो सभी जीवन बन सकते थे। लेकिन जीवन में आपके दस-पांच बच्चे ज्यादा से ज्यादा पैदा हो पाएंगे।

जीवशास्त्री कहते हैं कि जीवन बचाने की आकांक्षा के कारण कोई भी अवसर खोना नहीं चाहता है और इतनी विपुलता से अपने को फैलाता है कि अगर हजारों-लाखों मर कर भी व्यर्थ चले जाएं, तो भी जीवन बचा रहे।

जीवन की बचने की यह आकांक्षा ही आपको काम-वासना जैसी मालूम पड़ती है। यह गहरी से गहरी है। इससे ही आप जनमे हैं। और इससे ही जीवन आपसे जनमने के लिए आतुर भी है। काम-वासना के द्वार से जीवन में आपने प्रवेश किया है। और इसके पहले कि आप की देह व्यर्थ हो जाए, वह जीवन, जिसने आप में आवास बनाया था, नये आवास बनाने की कोशिश करता है।

इसलिए काम-वासना इतनी उद्दाम है। कितना ही उपाय करें, वह मन को पकड़ लेती है। वह आपसे बड़ी मालूम पड़ती है। आपके सब संकल्प, ब्रह्मचर्य के नियम, आपकी सब कसमें, सब प्रतिज्ञाएं पड़ी रह जाती हैं। और काम-वासना जब वेग पकड़ती है, तब आप पाते हैं कि आविष्ट हो गए और कोई बड़ी धारा आपको खींचे लिये जा रही है और आप उसमें बहे जा रहे हैं। इतनी मौलिक है काम-वासना।

और समस्त अध्यात्म की खोज इस काम-वासना के रूपान्तरण में है। क्योंकि यह जो जीवन की धारा है, अगर यह बाहर की तरफ बहती रहे तो नयी देह, नये शरीर उससे पैदा होते रहेंगे और यही जीवन की धारा अगर अपने पर लौट आए तो आपका परम जीवन भी इसी जीवन-धारा से उपलब्ध हो जाएगा।

इस जीवन-धारा के दो उपयोग हैं: जैविक और आत्मिक। बायोलाजी के अर्थों में संतति और अध्यात्म के अर्थों में आत्मा। इससे

शरीर भी पैदा हो सकते हैं अगर यह बाहर जाए और इससे आपकी आत्मा की किरण भी निखर के प्रगट हो सकती है अगर यह भीतर आए। यही धारा बाहर जाकर नये शरीर का जन्म बनती है और यही धारा भीतर जाकर आपका नया जन्म बनती है। जिस व्यक्ति की धारा उर्ध्वमुखी हो जाती है, अन्तर्मुखी हो जाती है, वह द्विज हो जाता है, उसका नया जन्म हो गया। एक जन्म तो मिलता है मां-बाप से, वह शरीर का जन्म है। एक और जन्म आपको स्वयं अपने को देना पड़ता है; वह आत्मा का जन्म है।

इसलिए समस्त धर्म काम-वासना के प्रति अति उत्सुक हैं। क्योंकि वही मूल शक्ति है, जिसका उपयोग किया जाना चाहिए। अगर आप संतति के निर्माण में ही लगे रहे, तो जिस शक्ति से आपका पुनर्जन्म हो सकता था और जिससे आप उसका अनुभव कर सकते थे जो अमृत है, उससे आप वंचित हो जाएंगे। तब अनेक-अनेक जन्मों में आप भटकते रह सकते हैं। जिस दिन यह धारा भीतर मुड़ जाएगी, उसी दिन देह में भटकना बन्द हो जाएगा। इसको हमने आवागमन से मुक्ति कहा है। और जब तक यह धारा बाहर ही चलती रहती है, तब तक आपको बाहर भटकना ही पड़ेगा।

अति कठिन है इस धारा को भीतर की तरफ मोड़ना। लेकिन यह असम्भव नहीं है। और कठिनाई भी नासमझी की वजह से है। समझपूर्वक इस धारा को भीतर ले जाया जा सकता है। जीवन की सभी शक्तियां समझपूर्वक काम में आ जाती हैं।

आज से पहले, इस सदी के पूर्व भी आकाश में बिजली चमकती थी; लेकिन वह आदमी के लिए सिर्फ भय का कारण थी। उससे डर पैदा होता था उसकी कड़क, उसकी चमक, कड़कड़ाहट छाती को डावांडोल कर जाती थी। आदमी सोचता था कि परमात्मा नाराज है और हम से कोई पाप, कोई भूल हुई है, इसलिए वह बिजली कड़काके हमें डरा रहा है। बिजली इन्द्र का बज्र, इन्द्र का शस्त्र समझी जाती थी। फिर हम बिजली को समझ पाए कि वह क्या है। हमने उस शक्ति के राज को समझ लिया। आज उसी बिजली से कोई भय नहीं रहा। आज वही बिजली, बंधी हुई, घर-घर में प्रकाश दे रही है। आज वही बिजली जीवन की सहयोगी हो गई है।

ज्ञान विजय है; अज्ञान पराजय है। अज्ञान में शक्ति से डर लगता है; ज्ञान में वही शक्ति सहयोगी और

सेवक हो जाती है।

जैसे आकाश में कौंधती बिजली कभी हमें डराती थी, वैसे ही कौंधती काम-वासना की शक्ति भी हमें डराती है, भयभीत करती है। क्योंकि हम अभी भी उस सम्बन्ध में अज्ञानी हैं; उस भीतर की विद्युत के सम्बन्ध में हम अभी भी अज्ञानी हैं।

ऐसा नहीं है कि उसके सूत्र नहीं जान लिये गए हैं। और ऐसा भी नहीं है कि लोगों ने उस भीतर की विद्युत को नहीं बांध लिया। और ऐसा भी नहीं है कि उस विद्युत को बांध कर लोगों ने उस विद्युत से जगत में सेवा नहीं ले ली। जैसे बाहर की विद्युत को बांध कर हमने बाहर प्रकाश कर लिया, वैसे ही उस भीतर की विद्युत को बांध कर भी भीतर प्रकाश कर लिया गया है। लेकिन एक कठिनाई है।

बाहर का विज्ञान सामूहिक सम्पत्ति बन जाता है; एक बार जान लिया कि बिजली को कैसे पैदा किया जाए, जान लिया गया कि बिजली से कैसे उपयोग लिया जाए, तो फिर हर आदमी को खोजना नहीं पड़ता है। सूत्र जाहिर हो गए; उसकी शिक्षा दी जा सकती है। तो हर आदमी को एडिसन होने की जरूरत नहीं है। फिर एक साधारण-सा इंजीनियर भी सभी काम कर देता है। वह कोई एडिसन नहीं है; उसने कुछ खोजा नहीं, उसको कोई बड़ा ज्ञान भी नहीं है। लेकिन उसे जानकारी है फिर एक टेकनीशियन भी, जो इंजीनियर भी नहीं है, बिजली का काम कर देता है। उसे कुछ भी पता नहीं है, बिजली क्या है, पर उसे इतना पता है कि उसका कैसे उपयोग किया जाए।

लेकिन भीतर के विज्ञान के साथ एक कठिनाई है। नियम खोज लिये जाएं, तो भी वे सार्वजनिक नहीं हो पाते हैं। हो नहीं सकते हैं; उनका स्वभाव ऐसा है। बुद्ध को पता है, कृष्ण को पता है, महावीर को पता है कि भीतर की यह जो विद्युत-धारा है—काम-ऊर्जा या सेक्स-एनर्जी—वह कैसे बांधी जाए, कैसे इसकी धारा बदली जाए, कैसे इसे बहाया जाए अपने अनुकूल, कैसे इससे भीतर प्रकाश पैदा किया जाए, कैसे भीतर की शक्ति में इसका उपयोग किया जाए, कैसे भीतर के जीवन को पाने के लिए यह मार्ग बन जाए। सब इन्हें पता है। और वे कहते भी हैं। लेकिन फिर भी आप इंजीनियर या टेकनीशियन की तरह उसका उपयोग नहीं कर पाते हैं।

भीतर के विज्ञान के सम्बन्ध में एक मौलिक बात है कि फिर उसमें आपको स्वयं एडीसन बनना पड़ेगा,

बुद्ध बनना पड़ेगा, क्राइस्ट बनना पड़ेगा। उसके पहले आप उसका उपयोग न कर सकेंगे। क्योंकि यह आपके भीतर की घटना है; मात्र सूचना और जानकारी से कुछ भी न होगा। अनुभव ही मार्ग बनेगा। संसार के सम्बन्ध में सूचना काफी है; अध्यात्म के सम्बन्ध में अनुभव जरूरी है। संसार के सम्बन्ध में जो भी हम जानते हैं, उसकी प्रयोगशालाएं बाहर हो सकती हैं। अध्यात्म के सम्बन्ध आप ही प्रयोगशाला हैं।

और भी जटिलता है। आप ही हैं प्रयोग करने वाले, आप ही हैं प्रयोगशाला, आप ही हैं उपकरण प्रयोग के, आप ही हैं शक्ति जिस पर प्रयोग होना है और आप ही हैं जो अंततः इस प्रयोग से रूपांतरित होंगे। वहां आपके अतिरिक्त और कोई भी नहीं है। इसलिए जटिलता बढ़ जाती है।

जैसे एक मूर्तिकार मूर्ति बनाता हो, तो पत्थर अलग होता है, जिस पर मूर्ति बनानी है; छेनी अलग होती है जिससे मूर्ति बनानी है, मूर्तिकार अलग होता है जिसको मूर्ति बनानी है और खरीददार अलग होता है जो मूर्ति खरीदेगा। लेकिन अध्यात्म की इस मूर्तिकला में आप ही सब कुछ हैं। आप ही हैं पत्थर जिसकी मूर्ति बननी है; आप ही हैं छेनी जिससे मूर्ति बनायी जानी है; आप ही हैं कलाकार जिसको मूर्ति बनानी है और आप ही हैं, ग्राहक, खरीददार। वहां सब कुछ आप हैं। इसलिए जटिलता बढ़ जाती है, उलझन गहरी हो जाती है।

लेकिन क्योंकि मूर्तियां बन गई हैं, तो ही हमने बुद्धों को देखा और जाना है। और जो एक में हो सकता है वह सभी में हो सकता है। इस सूत्र को हम इस दृष्टि से समझने की कोशिश करें और खयाल रखें कि काम-ऊर्जा की समझ ही उसकी विजय है। लड़ने से नहीं जीतेंगे; जानने से जीतेंगे। लड़ते नासमझ हैं। समझदार लड़ते नहीं हैं, वे समझने की कोशिश करते हैं। जितने जान लेते हैं, वे उतने ही मालिक हो जाते हैं।

बेकन ने कहा है, ज्ञान शक्ति है। विज्ञान के लिए उसने यह कहा था। लेकिन अध्यात्म के लिए भी सत्य है। ज्ञान शक्ति है।

जिस शक्ति को आप जानते नहीं हैं, उससे आप परेशान होंगे। और अनजान में जो भी करेंगे, उससे और जटिलताएं बढ़ जाएंगी। ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जो काम-ऊर्जा के सम्बन्ध में कुछ-न-कुछ न करता हो। बिलकुल मुश्किल है। बुरे से बुरा आदमी भी, अनैतिक आदमी भी, कामुक आदमी भी काम-वासना के

सम्बन्ध में कुछ-न-कुछ करता रहता है; रोकने की कोशिश करता है; संभालने की कोशिश करता है। इस सारी कोशिश में वासना विकृत हो जाती है; सुधरती नहीं है, बदलती नहीं है, और कुरूप हो जाती है।

सारी दुनिया कुरूप काम-वासना से भरी है। हजारों रूपों में काम-वासना विकृत रोगों का रूप ले लेती है। ये नासमझों द्वारा किए गए काम हैं। यह ऐसा है, जैसे कोई बिजली के सम्बन्ध में कुछ न जानता हो और वह यदि बिजली के किसी उपकरण को सुधारने में लग जाए तो उससे आशा है कि और बिगाड़ देगा।

अच्छा हो, छुओ ही मत जब तक समझ न लो। ठीक समझ कर ही भीतर चलना; अन्यथा जिस शक्ति से आत्मा का जन्म हो सकता था, उससे आत्मघात भी हो सकता है। और बहुत लोग आत्मघाती हो जाते हैं, अगर हम लोगों की मानसिक विकृतियों का अध्ययन करें, तो हम पाएंगे कि उनके मूल में काम-वासना के साथ किया गया अज्ञानपूर्ण कार्य है। फ्रायड के गहरे अध्ययन ने यह बात जाहिर कर दी है कि आदमी के मन की बीमारियों में सौ में निन्नानबे के मामले में काम-वासना की विकृति है। उस ऊर्जा के साथ कभी भूल हो जाती है और तब सब नष्ट हो जाता है। हजार तरह के पागलपन हैं, हजार तरह के मानसिक रोग हैं, हजार तरह की मानसिक चिन्ताएं हैं, उनके रूप कुछ भी हों, उनके गहरे में काम-वासना होगी। और काम-वासना इसलिए उनके गहरे में होती है कि आपने कुछ करने की कोशिश की है उस यन्त्र के सम्बन्ध में जिसका आपको कोई भी पता नहीं है।

और काम-वासना जीवन का आधार है; इसलिए बहुत गहरे होने चाहिए उसकी जानकारी, उसकी समझ उसका अनुभव। तीन बातें स्मरण रखें, फिर हम सूत्र में प्रवेश करें।

पहली बात, स्वाभाविक काम-वासना को अस्वाभाविक मत होने देना। जो स्वाभाविक है, उसे स्वीकार करना। अस्वीकार करने से वह अस्वाभाविक हो जाएगी। और उसे अस्वाभाविक करने से उसके विकृत, परवर्टेड रूप पैदा हो जाएंगे। स्वाभाविक काम वासना को बदलना आसान है; अस्वाभाविक को बदलना बहुत कठिन है। समझें इसे ऐसा कि एक पुरुष एक स्त्री में आकर्षित होता है; यह स्वाभाविक है। इस काम-वासना को बदलना आसान है। लेकिन सारी दुनिया में होमोसेक्युएलिटी है कि एक पुरुष

एक पुरुष में उत्सुक हो जाता है, या एक स्त्री एक स्त्री में उत्सुक हो जाती है; इस काम-वासना को बदलना कठिन है। यह विकृत है, अस्वाभाविक है; इसकी बदलाहट बहुत मुश्किल है। हेटरोसेक्सुएलिटी, इतरलिंग कामुकता को बदलना आसान है; क्योंकि वह स्वाभाविक है, प्राकृतिक है। होमोसेक्सुएलिटी, समलिंग कामुकता को बदलना अति कठिन है; क्योंकि वह अप्राकृतिक है।

इस तरह के हजार-हजार रूप आदमी को पकड़े हुये हैं। एक आदमी जिसे प्रेम करता है, वह उसको पास लेना चाहता है, निकट लेना चाहता है; यह स्वाभाविक है। इस स्वाभाविक वासना को बदलना आसान है लेकिन एक आदमी किसी को प्रेम नहीं करता है, किसी को निकट नहीं लेना चाहता है; लेकिन भीड़-भड़क्के में अगर स्त्री मिल जाए तो धक्का मार के नदारद हो जाता है; यह अस्वाभाविक है। इस आदमी की काम-वासना को बदलना बहुत मुश्किल है। यह विकृत है, यह स्वाभाविक नहीं है। जिससे प्रेम है, उसे निकट लेना स्वाभाविक है। लेकिन, जिससे प्रेम नहीं है, उसको भीड़ में धक्का मार कर चले जाना रोग है। इसकी बदलाहट जरा मुश्किल पड़ेगी। और इसकी बदलाहट के लिए अड़चनें हो जाएंगी।

लेकिन एक आदमी क्यों किसी स्त्री को भीड़ में धक्का मारने में उत्सुक हो जाता है? शायद किसी स्त्री को पास लेने का जो मन था, उसे उसने दबा लिया है, रोक लिया है। वही दबा हुआ झरना कहीं से भी फूट बह रहा है। तो पहली बात तो यह खयाल रखना कि स्वाभाविक काम-वासना ठीक है। और उससे आगे की यात्रा सीधी है। अस्वाभाविक काम-वासना और खतरनाक है, उससे सावधान रहना, बचना।

दूसरी बात खयाल रखना कि स्वाभाविक काम-वासना को सिर्फ भोगना ही नहीं, भोग के साथ-साथ उस पर भी ध्यान करना। क्योंकि वासना में दंश नहीं है, मूर्च्छित वासना में दंश है। अगर आपको लगता है कि मन को काम पकड़ता है, तो भोग में उतरना, लेकिन होशपूर्वक उतरना। ध्यान रखना क्या हो रहा है, ध्यान रखना क्या मिल रहा है, ध्यान रखना कि किस सुख की, किस आनन्द की, किस शान्ति की उपलब्धि हो रही है। ध्यानपूर्वक भोग में उतरना, ताकि भोग के गहरे रहस्य आपके ध्यान में समाविष्ट हो जाएं। वही आपकी समझ बनेगी।

और तीसरी बात। इस बात की खोज जारी रखना कि जो सुख

या शान्ति की झलक मिलती है, वह वस्तुतः काम-वासना के कारण मिलती है या कारण कोई और है। स्वाभाविक वासना हो, ध्यानपूर्वक वासना हो, तो यह तीसरी बात भी समझने में आपको ज्यादा देर नहीं लगेगी, और पता चल जाएगा कि काम-वासना के कारण सुख और आनन्द की प्रतीति नहीं होती है। इसको जो जानते हैं उन्होंने काक-तालीम न्याय कहा है। काकतालीम न्याय का मतलब होता है कि आप एक वृक्ष के नीचे बैठे हैं और एक कौए ने आवाज दी और कौए की आवाज के साथ संयोग की बात कि वृक्ष से एक फल टपक कर आपके पास गिर गया, तो आपने समझा कि कौए की आवाज के कारण फल गिरा। यह काक-तालीम न्याय है। कोई कौए की आवाज से फल नहीं गिरा। कौए की आवाज से फल के गिरने का कोई अनिवार्य सम्बन्ध नहीं है। लेकिन जटिलता और बढ़ जाएगी कि जब आप भी कौए की आवाज सुनें तभी अगर फल गिरे। तब बहुत मुश्किल हो जाएगी।

आपने सुनी होगी उस बुढ़िया औरत की कहानी, जिसके मुर्गे के बांग देने से रोज सुबह सूरज ऊगता था। एक दिन की बात हो तो संयोग भी मान लें। वर्षों का अनुभव है कि जब भी मुर्गा बांग देता है, तब सूरज ऊगता है। स्वभावतः उस बूढ़ी औरत ने मान रखा था कि मेरा मुर्गा जिस दिन बांग न देगा, उस दिन सूरज न निकलेगा। गांव से उसका झगड़ा हो गया तो उसने कहा कि अच्छा ठहर, तुम्हें मैं मजा चखाती हूं; मैं अपने मुर्गे को लेकर दूसरे गांव चली जाती हूं, तब तुम्हें पता चलेगा, जब अंधेरे में भटकोगे और तड़पोगे और जब सूरज नहीं ऊगेगा। वह बूढ़ी औरत अपने मुर्गे को लेकर दूसरे गांव में चली गई। और जब मुर्गे ने दूसरे गांव में बांग दी और सूरज ऊगा, तो उसने कहा, अब समझेंगे नासमझ लोग, उस गांव की क्या हालत हो रही होगी ? सूरज तो यहां ऊग गया। जहां मेरा मुर्गा, वहां सूरज को ऊगना होगा। यह काकतालीम न्याय है।

काम-वासना के सम्बन्ध में यही हो रहा है। काम-वासना से जो सुख मिलता है, उससे इतना ही सम्बन्ध है जितना मुर्गे की बांग में और सूरज के ऊगने में है। काम-वासना से सुख नहीं मिलता है; न मुर्गे की आवाज से सूरज ऊगता है। लेकिन किसी और गहरे कारण से सुख की प्रतीति होती है। उसका आपको पता हो जाए तो फिर यह भ्रान्ति टूट जाएगी कि मुर्गे की आवाज से सूरज ऊग

रहा है। और फिर सूरज उगाने के लिए मुर्गे की आवाज पर निर्भर रहने की जरूरत नहीं है। फिर सूरज आपका मुर्गे की आवाज के बिना भी ऊग सकता है।

काम की तृप्ति में जो सुख मिलता है, उसका मौलिक कारण काम नहीं है, उसका मौलिक कारण ध्यान है, समाधि है। काम-वासना के शिखर पर एक क्षण को मन शून्य हो जाता है और इस शून्य होने के कारण आपको सुख की झलक मिलती है। शून्य क्यों हो जाता है? आप काम-वासना में इतने तल्लीन हो जाते हैं, काम-कृत्य में और क्रीड़ा में इतने तल्लीन हो जाते हैं जितने आप किसी में तल्लीन नहीं होते; उस तल्लीनता के कारण मन शान्त हो जाता है और मन के शान्त होने के कारण सुख की झलक मिल जाती है।

अगर आप किसी और काम में भी इतने ही तल्लीन हो जाएं तो आप पर काम-वासना की पकड़ छूट जाएगी। इसलिए जो लोग स्रष्टा हैं, जो कुछ सृजन कर सकते हैं, उनको काम-वासनाएं ज्यादा नहीं पकड़ती हैं। इसलिए स्रष्टा पुरुषों के साथ स्त्रियां कभी प्रसन्न नहीं होतीं। सुकरात है, तो उसकी स्त्री सुकरात से प्रसन्न नहीं होती है। हो नहीं सकती। क्योंकि सुकरात इतना लीन हो जाता है दर्शन के चिन्तन में कि काम-वासना उसकी क्षीण हो गई है। उसी लीनता से उसे वह सुख मिल जाता है, जो काम-वासना से उसे मिलता है।

एक चित्रकार अपने चित्र बनाने में अगर लीन हो जाए, तो उसके मन को काम-वासना नहीं पकड़ती। एक मूर्तिकार अपनी मूर्ति को बनाने में लीन हो जाए, तो उसकी काम-वासना क्षीण हो जाती है। इस क्षीण होने का कारण यह नहीं है कि वह कोई ब्रह्मचर्य साध रहा है। इसका कारण यह है कि उसका सूरज पुराने मुर्गे की बांग के बिना ऊगने लगा। वह जो क्षण आता था मौन का काम के द्वारा, अब वह मूर्ति के ही निर्माण करने में आने लगा। अगर आप अपने गीत में डूब जाएं, अपने नृत्य में डूब जाएं, अपने ध्यान में डूब जाएं, तो आपको पता हो जाएगा कि सूरज के ऊगने का मुर्गे की बांग से कोई संबंध नहीं है। यह सूरज और तरह से भी ऊग सकता है।

ये तीन बातें खयाल रखें; स्वाभाविक हो काम, ध्यानपूर्वक हो काम और सतत यह खोज बनी रहे कि जो गहरे में शान्ति की प्रतीति होती है, वह काम-वासना के कारण होती है या कारण कोई और है जिसका हमें

पता नहीं है। जिस दिन आपको वह कारण साफ हो जाएगा, उस दिन उस कारण का सीधा ही उपयोग किया जा सकता है। ध्यान, समाधि, योग—सब उसी कारण पर खड़े हैं।

योग ने उस कारण को खोज लिया है सीधा। इसलिए लोग कहते हैं कि जब तक आप ब्रह्मचर्य को उपलब्ध न होंगे, तब तक आप योगी न बन सकेंगे। और मैं कहता हूं कि जब तक आप योग को उपलब्ध न होंगे, ब्रह्मचर्य उपलब्ध नहीं होगा। इसलिए मैं ब्रह्मचर्य को योग की शर्त नहीं बनाता। ब्रह्मचर्य को मैं योग का परिणाम कहता हूं। इसलिए मैं आपसे नहीं कहता हूं कि ध्यान अगर आपको करना है, तो पहले ब्रह्मचर्य साधें। जो यह कहते हैं, उन्हें पता नहीं है कि वे क्या कह रहे हैं। मैं आपसे कहता हूं, आप ध्यान साधें, ब्रह्मचर्य की चिन्ता मत करें।

जिस दिन ध्यान में आपको काम-वासना से मिले सुख से गहन सुख का अनुभव होने लगेगा, उस दिन दुनिया की कोई भी ताकत आपको काम-वासना में ले जाने की सामर्थ्य नहीं रखेगी। दुनिया में महत्तर सुख के लिए छोटे आनन्द छोड़े जा सकते हैं। लेकिन बड़े आनन्द का कोई अनुभव होना चाहिए।

आपके हाथ में कंकड़-पत्थर है, मैं आपसे कहूं कि छोड़ दें; तो आप कहेंगे कि कुछ तो है हाथ में, कंकड़-पत्थर ही सही हाथ भरा है तो ही अच्छा लगता है, खाली हाथ में बेचैनी होगी। आप छोड़ने को राजी न होंगे। और कंकड़-पत्थर रंगीन हैं और हीरों का खयाल देते हैं। लेकिन अगर मैं एक हीरा आपके हाथ में रख दूं, तो आपको पता भी नहीं चलेगा कब आपके हाथ से कंकड़-पत्थर छूट गए और कब आपने हीरे पर मुट्ठी बांध ली। और क्या फिर आप लोगों से कहते फिरेंगे कि मैं महात्यागी हूं, मैंने कंकड़-पत्थर छोड़ दिये? पता ही नहीं रहेगा आपको कि आपने कंकड़-पत्थर छोड़े। वे छूट गए।

ध्यान आपको उस हीरे को अपनी शुद्धता में दे देता है, काम-वासना में मुश्किल से जिसकी झलक और बड़ी अशुद्ध झलक कभी-कभी मिलती है। वह शुद्धतम हीरा जब हाथ में हो जाता है, अशुद्धि की खोज बन्द हो जाती है।

□ संकलन : *स्वामी आनंद मैत्रेय*

पूना

□ गीत

रजनीश के प्रति

जब से तुम खिल गये यहां, वीरान चमन गुलजार हो गया
जब से तुम मिल गये, यहां हर मौसम सदाबहार हो गया

तुम सबमें यों लसे कि जैसे
चमक उठे घन बीच बिजुरिया
तुम मधुरिम यों हंसे, हंसी की–
छूट पड़ी चहुं दिशि फुलझड़ियां

जब से तुम गा उठे, दिलों में मधुर तरन्नुम छिड़ी हुई है
जहां तुम्हारी सांस ढुली, उस जगह प्यार ही प्यार हो गया

तुमने जो रसधार बहाई
उसमें दुनियां हुई निमज्जित
तुमने जो सौन्दर्य लुटाया
उससे दुनिया हुई सुसज्जित

ऐसा जादू किया मोहने हम सारी सुध-बुध खो बैठे
जब से तुम पर रीझे प्रीतम, सपना—सब संसार—हो गया

जिसको तुमने स्पर्श कर दिया
वह माटी कंचन बन लहकी
जिसको तुमने दर्श दे दिया
वह काया चन्दन-सी महकी

तुम अमरित से बरसे कितने प्राण-पपीहों के घन बन कर
जिस पर तेरी नजर पड़ गई, उसका ही उद्धार हो गया

□ *स्वामी योग प्रीतम*
राजकीय महाविद्यालय,
भीलवाड़ा (राजस्थान)

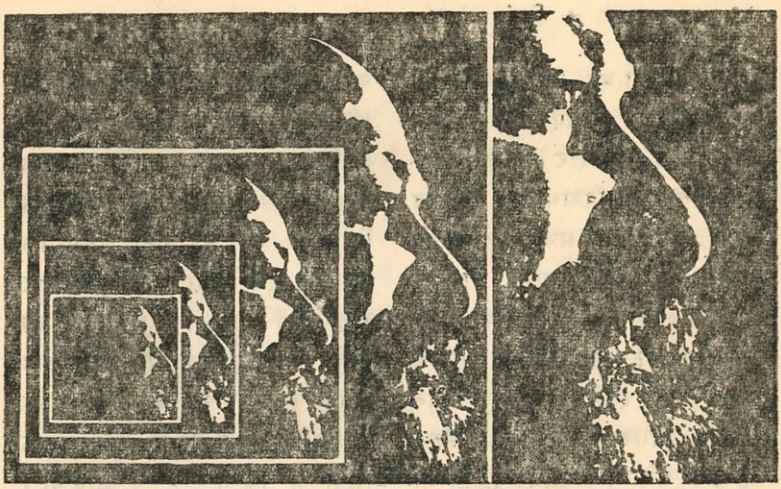

झलकियां

✠ १० से २० जून ७४ ✠

एक मित्र : अगेह जी, आप तो जून कैम्प में गए थे। लिख रहे हैं कुछ ?

नहीं प्रभो, अब तो कुछ लिखा नहीं जाता। मैं देखता हूं कि आलसी भी बहुत हो गया हूं। और फिर, शब्दों की पकड़ में कुछ आता भी तो नहीं।

मित्र : आपकी बात तो ठीक है। पर जो मित्र शिविर में नहीं जा पाते, वे आप द्वारा लिखी वहां की रिपोर्टिंग पढ़कर भी काफी आनन्द ले लेते हैं। तो कम-से-कम उन प्रेमियों का तो खयाल कीजिए ही जो किसी कारणवश शिविरों में नहीं जा पाते और आशा लगाए रहते हैं कि कुछ झलकियां अगेह भारती देंगे। हां तो, अच्छा अभी तो कुछ बताएं ही वहां के हाल-चाल।

वहां के हाल-चाल...हां, कुछ बातें जरूर बताने लायक हैं। सबसे

पहली बात तो यह कि भगवान श्री बहुत 'स्ट्रिक्ट' हो गए हैं और होते जा रहे हैं। इस बार लगभग तीन-सवा-तीन सौ शिविरार्थी थे। भगवान श्री ने एक दिन अपने प्रवचन के दौरान कहा कि मैं अभी और भी छांटूंगा लोगों को। मेरे पास अब ऐसे लोगों की कोई जरूरत नहीं है जिनके मन इतने दिनों मुझे सुनने के बाद भी अभी यहां-वहां भटक रहे हैं। मेरे पास अब वे ही आ सकेंगे जिन्हें मात्र सत्य की ही प्यास है। और मैं जो भी कहूं वही मानने की स्थिति में हैं। मैं पसन्द करूंगा कि पांच 'सिन्सियर' लोग मुझे सुनें अपेक्षाकृत पांच हजार इन्सिन्सियर लोगों के, और मैं लोगों को छांटूंगा इस तरह कि उन्हें यह न पता चलेगा कि मैंने उन्हें छोड़ा। उन्हें लगेगा यही कि उन्होंने ही मुझे छोड़ा।... भगवान श्री ने इस बात को बल देकर दोहराया।

'Now I am not for the masses, I will be working with a chosen few who have Capacity to work & live for truth.'

पहले तो जब भगवान श्री ने यह वक्तव्य दिया, तो मैं बहुत रोया कि मेरे तो छूट जाने के, छोड़ दिये जाने के दिन, लगता है, आ गए। क्योंकि मैं भी बहुत दिनों से भगवान श्री को सुन रहा हूं और इधर कुछ अरसे से मेरा मन यहां-वहां भटक रहा है। पर जब उन्होंने यह कहा कि छूटने वाले को यही लगेगा कि उसने ही मुझे छोड़ा, तब मुझे जरूर कुछ ढाढ़स बंधा कि प्रभो, मैं तो तुम्हें किसी हालत में नहीं छोड़ सकता। मैं पापी जरूर हूं मगर तुम्हारी कृपा से इतना तुम्हें समझ लिया हूं कि मैं तुम्हें न छोड़ूंगा। हां, तुम छोड़ो तो छोड़ो, मैं न छोड़ूंगा।

मित्र : तो अब भगवान श्री बहुत 'स्ट्रिक्ट' हो रहे हैं?

हां, बहुत 'स्ट्रिक्ट' और बहुत 'रेस्ट्रिक्टेड' भी। प्रातः ८ से ९॥ ही उनके दर्शन होते थे जब अंग्रेजी में प्रवचन देते थे। ९.४५ से १०.४५ पूना के स्वामी आनन्द स्वभाव सक्रिय ध्यान के प्रयोग करवाते थे। २ बजे से ३ बजे दिन हिन्दी के ताजे टेप्ड प्रवचन सुनाये जाते थे। ३.३० से ४.३० कीर्तन ध्यान में भी भगवान श्री सशरीर उपस्थित नहीं रहते थे। संध्या ७ से ९ पूरे दो घण्टे का इस बार नया ध्यान-प्रयोग सूफी दरवेश नृत्य (व्हर्लिंग डांस) शुरू करवाया। इसे भी इङ्गलैंड के स्वामी आनन्द तीर्थ करवाते थे। प्रातः ध्यान, अपरान्ह कीर्तन-ध्यान एवं संध्या

सूफी दरवेश नृत्य के समय खाली भगवान श्री की कुर्सी स्टेज पर रखी रहती थी। भगवान श्री ने इस सम्बन्ध में प्रवचन में कहा था कि खाली कुर्सी सचमुच में खाली नहीं है। यदि आप 'सिन्सियर' हैं तो मुझे वहां मौजूद पायेंगे और यदि आप 'सिन्सियर' नहीं हैं तो मैं वहां सशरीर बैठा रहूं तो भी नहीं हूं।...व्यक्तिगत मुलाकात का समय ७ से ७.१५ संध्या, आठ-आठ, दस-दस के ग्रुप में। जो मिलने जाते थे, उन्हें दरवेश-नृत्य १०-१५ मिनट के लिए छोड़ना पड़ता था।...भगवान श्री का कहना है कि आप ईमानदारी से ध्यान पर श्रम करेंगे तो जब भी आप इस हालत में होंगे कि आपको सहायता की जरूरत है, तभी आपको सहायता पहुंच जायेगी, चाहे आप दुनिया के किसी कोने में हों। लेकिन अब ऐसा नहीं चलेगा कि जैसे कल एक महिला मिलने आई थीं। कहने लगीं, मैं तो पूरी तरह आपको समर्पित हूं और एक इशारे पर प्राण भी दे सकती हूं। मैंने उसे कहा, तेरे सिर के बाल थोड़ा छोटा करवा ले। तो उसने कहा—आई कान्ट डू देट, आई लव माई हेयर (मैं बाल नहीं कटवा सकती, मैं अपने बालों को बड़ा प्यार करती हूं, वे मुझे बहुत प्रिय हैं)। अब वह नहीं समझती कि वह क्या कह रही है।

एक बात और जो मुझे विचित्र लगी वह यह कि 'लान' में जहां प्रवचन हुआ करता था, प्रवचन के समय ठीक ऊपर से बार-बार बड़े जोरों की आवाज करते जहाज गुजरते थे। कभी-कभी रेल के इन्जिनों की भी इतनी तेज सीटी बजती कि लगता था यहीं बगल में बज रही है। इसमें मुझे दो बातें दिखतीं। एक तो यह कि स्वामी आनंद तीर्थ जो प्रश्न पूछ रहे थे, वे मूलतः जेन मास्टर्स की शिक्षा व उनकी ध्यान-पद्धतियों पर आधारित थे जो कि बहुत खतरनाक हुआ करते थे। भगवान श्री की स्वयं की भी जेन मास्टर जैसी ही निर्मम मुद्रा रहती व व्यवहार भी सख्ती का। इसी में एकदम सिर के ऊपर से गरजता हुआ जहाज गुजरता तो लगता कि किसी जेन मास्टर ने ऊपर से भी हमला बोल दिया है। ऐसे में बड़ी विचित्र जागरूकता की प्रतीति होती। दूसरी बात यह कि मैंने स्वयं इस बात को देखा व अनुभव किया है कि भगवान श्री अपने प्रवचन के समय तनिक भी बाधा पसंद नहीं करते, यहां तक कि किसी के हाथ-पैर का हिल जाना भी उन्हें दिख जाता है पर यहां जहाज का बार-बार आना स्वीकार कर लिए हैं।

एक दिन भगवान श्री ने एक बड़ा मार्मिक संस्मरण सुनाया। प्रश्न था कुछ, कि एक जेन मास्टर के शिष्यों के दो ग्रुप में विवाद हो गया था एक बिल्ली को लेकर। दोनों ग्रुप बिल्ली पर अपना दावा करते थे कि बिल्ली हमारी है। मामला जब गुरु के पास आया तो गुरु ने ऐसा ही कुछ कहा (मुझे ठीक से याद नहीं) कि दोनों होश में आओ, 'सॉबर' होओ, तब बिल्ली के प्राण बच सकते हैं, वर्ना मुझे बिल्ली को काटकर आधी-आधी बिल्ली दोनों ग्रुप को दे देना पड़ेगा, पर किसी के कुछ समझ में न आया और दोनों ही बिल्ली पर अपना-अपना 'क्लेम' जारी रखे रहे। अंततः गुरु ने बिल्ली को काटकर दो टुकड़े कर दिये और एक-एक टुकड़ा दोनों को दे दिया। अब प्रश्न यह था कि यह कृत्य बड़ा कठोर एवं हिंसक था। एक सिद्ध पुरुष द्वारा यह कैसा व्यवहार ?

इस प्रश्न के उत्तर में भगवान श्री लगभग एक घण्टे बोले थे, अतः उसे सविस्तार तो किताब 'रूट्स एण्ड विंग्स' छपने पर पढ़ियेगा। संक्षेप में एक-दो प्वाइंट्स जो मेरे ख्याल में हैं, वह मैं आपसे कहता हूं। पहली बात भगवान श्री ने कहा— बहुत बार ऐसा होता है कि 'कह कर' नहीं, 'कर के' ही समझाना पड़ता है। तो यहाँ गुरु के द्वारा बिल्ली को काटकर दो हिस्से कर देने से जो उन शिष्यों को समझ पड़ा होगा, वह कुछ भी कहने से समझ में नहीं आ सकता था। यदि आ सकता होता तो पहले ही समझ गए होते, बिल्ली के लिए लड़ते ही नहीं। इस बात को काफी अच्छे ढंग से भगवान श्री ने बताया। और एक बात और कही उन्होंने, पर साथ ही यह भी कह दिया कि यह सब अन्तर्जगत् की गुह्य बातें हैं। वह यह कि उन्होंने कहा कि यह बिल्ली भी कोई साधारण बिल्ली नहीं रही होगी। एक सिद्ध पुरुष के हाथ से काटा जाना परम सौभाग्य की बात है। वह सभी के भाग्य की बात नहीं है। वह कोई साधारण बिल्ली न रही होगी। और वह गुरु ने बहुत करुणा के कारण यह कृत्य किया है; कठोरता के कारण नहीं। उस बिल्ली को बहुत श्रेष्ठ जन्म मिला होगा। वह बहुत ऊंची आत्मा हुई होगी। फिर, जो सिद्ध होता है उसे दिखलाई पड़ता है कि कहीं मौत नहीं है, आदि आदि...।

इसी प्रवचन के समय भगवान श्री ने माथेरान शिविर का एक संस्मरण सुनाया जिसे सुन-सुनकर मैं तो निरंतर रोता रहा। शायद बहुतों ने रोया होगा। भगवान श्री ने कहा— जीवों में भी बहुत सी श्रेष्ठ आत्माएं

होती हैं ऐसा न समझें कि आप मनुष्य हैं तो आप बड़े श्रेष्ठ हैं। लेकिन हम कभी गौर नहीं करते। माथेरान शिविर की बात है। वहां एक कुत्ता था जो कि जब मैं प्रवचन करूं तो वहीं थोड़ी दूर पर बैठा रहता और निरंतर मेरी ओर देखता रहता। प्रवचन-समाप्ति पर जब मैं कार में आता निवास पर, तो वह भी कार के साथ-साथ दौड़ता हुआ आता। मैं जब तक अंदर रहता— सोता या नहाता या भोज करता— वह बाहर ही बैठा रहता। मैं जब निकलता, वह फिर कार के साथ हो लेता। लोग जब ध्यान करते वह चुपचाप देखता रहता। फिर शिविर समाप्त हुआ। मैंने जब ट्रेन द्वारा प्रस्थान किया तो वह कुत्ता भी ट्रेन की बगल-बगल दौड़ता हुआ चला। नेरल तक छोटी लाइन की छोटी गाड़ी है, धीमी गति से चलती है। वह गाड़ी के साथ-साथ दौड़ रहा था (प्रेमियो, देखो भगवान का प्रेम! कुत्ते को भी बराबर रिस्पांस दे रहे हैं)। पर ट्रेन का गार्ड दयालु था, उसने थोड़ी ही देर में उसे पुचकार कर अपने डिब्बे में बुला एवं चढ़ा लिया। इस तरह वह कुत्ता नेरल तक आया फिर नेरल से तेज गाड़ी मिलती है। तो वहां नेरल में जब मेरी गाड़ी छूटी तो बहुत से लोग विदा दे रहे थे। बहुत से लोग विदा देने आये थे। उस समय वह कुत्ता भी उदास खड़ा था और उसकी आंखों में आंसू थे...अब यह कोई साधारण कुत्ता नहीं था। पर ने सब अन्तर्जगत की बातें हैं...। उस कुत्ते के बारे में बताते समय भगवान श्री कितने प्रेमपूर्ण एवं करुण थे, यह तो देखते ही बनता था। कौन होगा जो रो न पड़ेगा! कौन होगा जो उस धन्यभागी कुत्ते के लिए प्रेम से न भर जायेगा। जो हमारे प्यारे को इतना प्रेम करता था। कौन होगा जो उस असामान्य कुत्ते को देखने की लालसा से न भर जायगा!!

मित्र : इतनी अच्छी-अच्छी बातें, और लिखेंगे नहीं आप?

लिखा कुछ न जाएगा। आप सुन लें, जो कुछ ख्याल है, बस।

एक दिन एक प्रश्न था कि एक जेन मास्टर ने अपने शिष्य के सिर में 'हिट' कर दिया और वह तत्क्षण मर गया। गुरु का यह एक्ट समझ में नहीं आता। कृपया समझाएं?

भगवान श्री ने कहा कि जो उपलब्ध होता है उसे यह दिखाई पड़ता है कि कौन कब मरेगा। उस गुरू ने देख लिया कि यह शिष्य एकाध क्षणों में मरने वाला है और उसके मन में काम-वासना के विचार

चल रहे हैं। ज्यादातर आदमियों के मन में—बूढ़े से बूढ़े आदमी के भी मन में—मरने के समय काम-वासना का विचार चलने लगता है। यही पुनर्जन्म का कारण होता है। असल में मृत्यु व जन्म के बीच सेक्स मध्य-बिन्दु है। तो गुरु को दिख गया कि यह शिष्य मरने के करीब है और काम-वासना का विचार रेंग रहा है इसके मन में। अतः उसने 'हिट' करके सहायता पहुंचायी कि अंतिम क्षणों में काम-वासना के विचार से मुक्त हो जाय। विचार की वह धारा टूट जाय। मगर जापान में हजारों वर्षों से यह प्रेरणा रही है। सभी जानते हैं कि गुरू ऐसा भी कर सकता है। हमारे यहां अगर किसी को यों 'हिट' कर दिया जाय और वह मर जाय तो मुकदमा चल जाय। लेकिन आप यह मत सोचें कि मैं वह सब नहीं करूंगा। मैं वह सब करूंगा तुम्हारे मरने के समय। मैं वह सब करूंगा। मृत्यु के समय यदि मृत्यु के साथ जागरूकता जुड़ जाय तो आप उपलब्ध हो गए। और मैं वह सब करना शुरू कर चुका हूं। आप बचेंगे नहीं। आप जेन मास्टर से भी ज्यादा खतरनाक मास्टर के पास आ गये हैं। आपके साथ वह सब किया जाएगा जो दुनिया में कहीं भी कभी भी किया गया है और वह भी किया जायगा जो कहीं भी कभी भी नहीं किया गया है।...

एक दिन भगवान श्री ने यह भी कहा कि मन्दिर उसका है जो प्रार्थना करे, जो प्रार्थना के भाव से भरा हो। मन्दिर पर किसी की बपौती नहीं है। अब तक धर्म के मन्दिर पर पूर्व का अधिकार रहा है। लेकिन अब पूर्व के लोग प्रमाद में हैं। उनमें प्रार्थना के भाव नहीं है जितने पश्चिम के लोगों में हैं। लोग मुझसे पूछते हैं कि आपके शिविरों में विदेशी लोग अधिक आते हैं, क्यों? अब मैं उन्हें क्या कहूं! विदेशी लोग आते हैं तो क्या इन्हें मैं रोक दूं? तो मैं यह बता देना चाहता हूं कि अगर पूर्व के लोग समय रहते चेत नहीं जाते, पात्रता के लिए निष्ठापूर्वक श्रम नहीं करते, तो मैं धर्म का मंदिर पश्चिम को सौंप दूंगा—अध्यात्म की चाभी पश्चिम को दे दूंगा। क्योंकि मेरी रुचि इसमें नहीं है कि मंदिर आवश्यक रूप से पूर्व के पास हो। मेरी रुचि इसमें है कि दुनिया में धर्म बचे, अध्यात्म की चाभी लुप्त न हो जाय। फिर चाहे वह पूर्व के पास हो या पश्चिम के, यह बात मेरे लिए महत्वपूर्ण नहीं है।

एक दिन स्वामी आनन्द तीर्थ ने पूछा कि प्रश्न पूछने में भय लगता है, क्योंकि नासमझी के प्रश्न हैं कैसे

पूछूं। डरता हूं, पूछने में।

उसके उत्तर में भगवान श्री ने कहा कि मुझसे डरने की कोई जरूरत नहीं है मेरे पास सहज-स्वाभाविक (स्पाटेनियस एण्ड नेचरल) हों। मेरे निकट भयभीत होने की कोई भी जरूरत नहीं है। कितने भी नासमझी के प्रश्न हों। वस्तुतः तो सारे प्रश्न नासमझी के होते ही हैं। क्योंकि पूछना मन है और मन के अर्थ हैं—नासमझी। लेकिन तुम्हारे प्रश्नों से मुझे कुछ लेना-देना नहीं है मुझे तो जो बोलना है वही बोलता हूं। और गहरे देखें तो प्रश्न ही नहीं, उत्तर भी 'ऐबसर्ड' हैं। प्रश्न व उत्तर ये सिर्फ एक्सक्यूसेस बहाना है। असल बात तो यह है कि इतनी देर के लिए तुम मेरे पास हो, मेरे निकट हो, मैं तुम्हारे साथ हूं। कीमत की बात यही है कि मैं तुम्हारे बीच हूं। तुम मुझे पी लो जितना पी सको। तुम्हारी सामर्थ्य ही सीमा है अन्यथा असीम प्रस्तुत है। प्रश्न-उत्तर तो मात्र बहाना है, क्योंकि तुम चुप बैठ नहीं सकते। और अगर तुम्हें बोलने को कहूं तो तुम्हें फर्क पड़ता है। तुम भीतर भी शोर करने लगते हो। मैं बोलता हूं तो मेरे भीतर कोई फर्क नहीं पड़ता। मैं भीतर शून्य बना रहता हूं। और चूंकि तुम मुझे प्रेम करते हो, तुम पूरे 'अटेंशन' के साथ मुझे सुनते हो। तुम इतना ध्यानपूर्वक सुनते हो कि तुम भी करीब-करीब चुप हो जाते हो। तुम्हारी चुप्पी जिन क्षणों में सघन होगी उन क्षणों में शांति की झलक मिलेगी, शून्य की झलक मिलेगी। वह जो शांति की झलक मिलेगी, वही मैं हूं। उसी में डूबो, वहीं है द्वार। उसी द्वार से मुझ तक आ सकोगे और मुझमें डूब सकोगे।

प्रश्नों-उत्तरों पर अधिक ध्यान दिया तो चूक जाओगे। प्रश्न-उत्तर तो तुम्हें चुप बैठालने के लिए बहाना मात्र है, क्योंकि तुम चुप नहीं बैठ सकते। इसलिए निवेदन है कि जो भी सुन रहे हैं, सुनने के बाद उसे भी 'हिट' कर दें जैसे वह जेन मास्टर शिष्य के सिर में 'हिट' किया था। हां, यह सब भूल जाने को है, फेंक देने को है। डूबना है शून्य में।

एक दिन प्रसंग आया चमत्कारों का। एक जेन गुरू है, शायद बांकई। उसके शिष्य आकर उससे पूछते हैं कि आज एक दूसरे सम्प्रदाय के कुछ अनुयायी मिले थे। वे कहते थे कि उनके गुरू बहुतेरे चमत्कार दिखाते हैं। जैसे कि नदी के एक किनारे कोई खड़ा होकर कागज पर कुछ लिखेगा, गुरू दूसरे किनारे से उसे पढ़ लेगा। तो वे हमसे पूछते थे कि तुम्हारे गुरू भी कोई चमत्कार करते हैं। तो उस जेन मास्टर ने कहा कि

जब भूख लगती है खाना खा लेता हूं, जब नींद लगती है सो जाता हूं जब नींद टूटती है, उठ जाता हूं; बस—इसके सिवा मैं और कोई चमत्कार नहीं जानता। भगवान श्री ने कहा, और इससे बढ़कर चमत्कार जमीन पर है नहीं। आप यह न समझें कि आप भूख लगने पर खाते हैं। आप तो समय पर खा लेते हैं घड़ी देखकर। और जब नींद नहीं आ रही होती तो सोने की कोशिश करते रहते हैं और जब नींद आती होती है तो जागने की। इससे बड़ा कोई चमत्कार नहीं है।

वह चमत्कार केवल मन की ही शक्ति है, उसका अध्यात्म से कोई भी संबंध नहीं है। वह मन की ही शक्ति है। और शक्ति सदा राजनीतिक है, आध्यात्मिक नहीं। और जो भी चमत्कार कर रहे हैं, वे आध्यात्मिक तनिक भी नहीं, बल्कि अध्यात्म विरोधी हैं। और मन की उस शक्ति के द्वारा आप एक वृक्ष को कह सकते हैं कि मर जाओ और वह वृक्ष मर जाएगा। आप एक रोगी को कह सकते हैं कि स्वस्थ हो जाओ और उसका रोग विदा हो जायगा, मगर इन नासमझियों का अध्यात्म से कोई भी संबंध नहीं है। अध्यात्म तो है : प्रकृति को बहने देना—जो हो रहा है होने देना—बिना किसी अवरोध के खुद भी अस्तित्व के, समस्त के साथ एक हो जाना। और उससे कठिन इस जगत में कुछ नहीं है। सर्व स्वीकार चमत्कार है।

इस बार भगवान श्री ने प्रेम के सम्बन्ध में जितना साफ बोला है शायद इसके पूर्व कभी नहीं बोला है। या इस बार मेरे भीतर जितना गया है उतना कभी नहीं गया है। इस दृष्टि से जो शिविर में नहीं जा सके थे उन्हें १४ व १५ जून के इंगलिश प्रवचन अवश्य सुनना चाहिए। प्रेम पर अद्भुत प्रवचन हैं वे। वैसे तो निवेदन करूंगा कि आप शिविर नहीं आ सके तो आपको १४, १५, १६, १८ एवं २० जून के पांच प्रवचन अवश्य सुनना चाहिए। खैर, तो प्रेम पर कुछ बातें जो मेरे खयाल में हैं उन्हें आपसे कहूं।

उन्होंने कहा कि पूर्व ने बिना प्रेम के 'अरेंज्ड मैरिज' (व्यवस्थित विवाह) करके 'मिस' किया; और पश्चिम ने मुक्त यौन करके 'मिस' किया। पश्चिम ने जो किया वह एकदम आंशिक, शारीरिक... वहां तनिक भी गहराई नहीं। जब दो डेप्थ्स (गहराइयां) मिलती हैं, जब दो गहराइयां एक दूसरे से कम्युनिकेट होती हैं, एक दूसरे में 'डिजाल्व' होती हैं, तभी ठीक है, तभी शुभ है। मगर यदि वहां कोई गहराई नहीं है,

वहां कोई प्रेम नहीं है तो अच्छा हो कि अलग हो जायं—मत बरबाद करें एक दूसरे का जीवन। जीवन बड़ा कोमल है। उसे बरबाद मत करें, समय न गंवायें, जीवन न गंवायें।

मैं देखता हूं कि पति-पत्नी में प्रेम तो दूर रहा वे एक दूसरे के साथ रहते तक नहीं, एक दूसरे को झेलते हैं, बस।... और मैं कहता हूं कि परमात्मा तक पहुंचने के दो ही मार्ग हैं, एक है 'प्रेम' दूसरा है 'ध्यान'। और दोनों में बहुत समानता है। प्रेम व ध्यान करीब-करीब एक अनुभव के दो नाम हैं, जब किसी दूसरे से ध्यान लग जाता है—तो प्रेम। जब स्वयं के ही भीतर—तो ध्यान। और प्रेम ध्यान में सहयोग करता है, ध्यान प्रेम में। प्रेम का वैसे ही बुद्धि व विचार से कोई सम्बन्ध नहीं है, जैसे ध्यान का। ध्यानी व प्रेमी को दुनिया पागल व अन्धा कहती है।

ऐसा लगता है, समूची संस्कृति व समूचे समाज में कोई साजिश है। इसलिए मैं तो कहता हूं, संन्यास का यही अर्थ है कि अब मैं समाज से मुक्त होता हूं यानी समाज ने जो-जो आरोपित किया है, जो नियम बनाया है—उससे। संन्यास का अर्थ जंगल चले जाना नहीं है। लेकिन आप जितना अधिक 'हेडफिक्सड' हैं उतना ही प्रेम के अयोग्य हैं। प्रेम इतना इरेशिनल (अबुद्धिवादी) है।...प्रेम एक भाव-दशा है। या तो वह है, या फिर नहीं है। सोच-विचार की बात ही बेहूदा है।...और कोई भी कृत्य जो बिना बुद्धि को बीच में लाए किये जा सकते हैं, वे ही सर्वोत्तम हैं, वे ही सर्वश्रेष्ठ हैं। पर तुम भयभीत होते हो और चूकते चले जाते हो। स्मरण रहे, नियम सिर्फ नियम हैं। हमने उन्हें स्वीकार किया है इसलिए वे हैं। लेकिन सत्य किसी नियम के पीछे नहीं चलता। आकाश बिना नियम के है। जीवन बिना नियम के है। हां, 'खेल' और 'झूठ' बिना नियम के ही नहीं चल सकते। उनके लिए नियम व कानून निर्मित करना पड़ता है। अगर आपको ताश खेलना है तो कुछ नियम बनाने पड़ेंगे, वर्ना खेल ही नहीं हो सकता। अतः एक सच्चा धर्म अनियम में होता है।... लेकिन अनियम में होने का मतलब बहुत बड़ा है। बिना बुद्धि को बीच में लाये जीना।

असल में जानने का सबसे बड़ा माध्यम हृदय है। तुम कुछ भी समझ नहीं सकते, तुम महसूस कर सकते हो। और महसूस करना समझने से बहुत गहरा है। और हृदय भौतिक नहीं है, वह हड्डियों के पीछे छुपा है। पति-पत्नी एक सामाजिक मान्यता है। प्रेम को पता ही नहीं

कि पत्नी क्या होती है। जैसे सौ रुपये का नोट एक मान्यता है। समाज सौ के नोट का चलन बन्द कर दे, वह दो कौड़ी का हो गया। पाप-पुण्य भी समाज की मान्यता है। मैं उसे ही संन्यासी कहता हूं, जो सारे 'सिस्टमस्' एवं 'इन्स्टीट्यूशंस' को तोड़ता है। क्योंकि उन्हें तोड़ने का मतलब है बुद्धि को तोड़ना। और इस जगत में जो भी श्रेष्ठ है, वहां खतरे हैं, जोखिम है। परमात्मा जोखिम है। जीवन जोखिम है। इसलिए मैं धार्मिक होने के लिए वारियर्स (समुराई) होना बड़ा कीमती गुण मानता हूं। समुराई होने से मेरा मतलब सैनिक होना नहीं है। आपकी फौज के सैनिक समुराई नहीं हैं। समुराई माने चित्त का एक गुण। व्यापार माने अधिक पाने व कम देने की चेष्टा। समुराई माने सब कुछ को दांव पर लगाने की हिम्मत। जुआड़ी की तरह सब दांव पर। और पूरा जीवन एक जुआ है। बचाने से कुछ बचता तो है नहीं।

मुझे मालूम है कि ये बातें मैं क्रम से नहीं कह पाया हूं, पर मैं मानता हूं कि आप ठीक से समझ सके हैं।

मित्र : बड़ा आनन्द आया, आपके मुख से इतना सब सुनकर। मैंने कष्ट तो बहुत दिया पर चाहूंगा कि भगवान श्री के कुछ ताजे चुटकुले और सुना दें। बस।

एक दिन हिन्दी के 'टेप्ड' प्रवचन में भगवान श्री ने कहा—"पुरुष का स्वभाव है बच्चे सा सरल व निर्दोष। ..." और भी कुछ कहा उन्होंने और फिर कहा—"कृष्ण की पूजा भले करो पर अगर वे अभी मिल जायं तो पत्नी से परिचय कराना न चाहोगे।"

△ △

भगवान श्री ने हिन्दी प्रवचन में ही एक दिन कहा—झूठ को बड़ा आयोजन करना पड़ता है। मैंने सुना है कि काशी की एक दूकान पर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा है : असली शुद्ध घी की दूकान। अब अगर शुद्ध ही है तो लिखने की क्या जरूरत ? फिर 'असली शुद्ध' ! सुनकर ही लगता है कि जरूर कुछ गड़बड़ है। पर इतना ही नहीं, नीचे लिखा है—नकली सिद्ध करने वाले को पांच सौ रु० इनाम—और कि, ऐसे इनाम यहां से हजारों लोगों को मिल चुके हैं।

△ △

हिन्दी प्रवचन में ही भगवान श्री ने कहा : ये कपड़े स्मरण के लिए हैं, रिमेम्बरिंग के लिए। जैसे गांठ बांध लेते हैं बाजार जाते हैं तो, कि फलां चीज ले आना नहीं भूलना है। हालांकि कुछ मूढ़ गांठ बांध कर

भी.....। ऐसे ही एक महानुभाव ने एक बार गांठ बांधा कि आज रात जल्दी सो जायंगे। गांठ तो बांधा था पर यह भूल गए कि किस लिए गांठ बांधा था। याद करने लगे। रात दो बजे याद आया कि आज रात जल्दी सो जाने के लिए गांठ बांधा था।

△ △

एक बात और याद आ गई जो कि चुटकुला नहीं है, पर है बताने जैसी। इंगलिश प्रवचन में भगवान श्री ने बताया कि एक बार एक नये बुद्ध संप्रदाय के मित्र मिलने आये। उनसे बातचीत के दौरान मैंने एक बोध-कथा कही। उन्होंने कहा—लेकिन यह तो बुद्ध के ग्रंथों में नहीं है, मैं पूरा पढ़ा हूं। मैंने कहा—ग्रन्थ को मेरे पास लावें, मैं जोड़ दूंगा, अगर यह नहीं है तो।

△ △

और यह तो आपको मालूम ही होगा कि इस बार शिविर का नाम 'ध्यान योग शिविर' नहीं, 'समाधि साधना शिविर' था, और यह भी अकारण नहीं है। भगवान श्री साधकों को गहराइयों में खींच रहे हैं...और-और गहराइयों में खींचते जा रहे हैं।

□ प्रस्तोता : *स्वामी अगेह भारती*
जबलपुर

भगवान रजनीश साहित्य

नए प्रकाशन

[१]	ताओ उपनिषद् भाग २	४०-००
[२]	कृष्ण मेरी दृष्टि में	४०-००
[३]	गीता दर्शन अध्याय ४	३०-००
[४]	समाजवाद अर्थात आत्मघात	६-००
[५]	ज्योतिशिखा (संयुक्त समापन अंक)	४-००

जीवन जागृति केन्द्र
३१, इजरायल मोहल्ला, भगवान भुवन,
मस्जिद बंदर रोड, बम्बई-९
फोन : ३२७३१८

आचार्य : भगवान

शुभ-अशुभ नहीं रहा । राम, कृष्ण, हरि की पकड़ जाती रही। असीम नीरवता छा गयी है, खाली हो गया है पात्र । प्रभु से भरा गया यह पात्र अब बांटने चला है । अपने अस्तित्व को खो कर परमात्मा हो गया है । फिर भी लोग कैसे हैं जो कहते हैं श्री रजनीश को कि आचार्य रजनीश जब तक आचार्य ही रहे तब श्रद्धा थी उनमें और अब ? अब तो है ही नहीं । भला क्यों ? वह इसलिए कि अब भगवान श्री रजनीश जो हो गये हैं। अहम् आ गया, भगवान बन बैठे ! नयी पद्धति चलाना चाहते हैं । कैसा है यह मानव मन, जो अपनी इच्छा तथा विचार के अनुकूल समझ लेता है सबको । अगर इस तरह का भ्रम रहा तो क्या हो सकता है ? जिसका लक्ष्य ही है नर को नारायण हो जाने की प्रेरणा देना । घबड़ाओ मत मकड़ी का जाल बना लिया है शब्दों ने, अपने भीतर से उसे झाड़ के बाहर फेंकने भर की देर है । फिर आप भी भगवान हैं । शब्द भर खोने की देर है फिर शून्य में स्थापित हो ही जाइएगा । ईर्ष्या की कोई गुन्जाइश नहीं । कांटों में ही कली का भान होगा आपको भी कि सब भगवान ही भगवान हैं । उसके सिवा कुछ है भी नहीं । देखने के लिए जग जाइए, खोने के साहस के साथ । इसकी भी जरूरत नहीं, मात्र देखते रहिए एक दर्शक बन कर । भगवान कोई बनता नहीं और न बनाया ही जा सकता है । खुद ही हो जाता है । सागर के किनारे लहरें गिनने से मोती मिलने से रहे। देर काहे की डुबकी भर

लगा लीजिए । तब ही तो पता
चलेगा ।

सागर को पी लिया है हमने,
पानी की अब चाह नहीं।
प्यास लगेगी भी अब कैसे,
जिसमें पानी की थाह नहीं ।। □ *अनाम* (बिहार)

सजग जीवन

देखा—पाया सब स्तब्ध
सारा कुछ होकर भी रहा अछूता
दिन खोजा, रात खोजा, रहा सदा अनभिज्ञ
प्रभु की कृपा ऐसी बरसी
खो दिया, हो गया सब ।

○

[माउंट आबू साधना शिविर १-४-७२, के अवसर पर उठा यह भाव-बोध श्री बी० के० मेहता, १०, जवाहर नगर, अहमदाबाद–७ के द्वारा प्रस्तुत]

भगवान रजनीश प्रेमियों का आवाहन

सहज प्रेम योग शिविर का आयोजन

(१) शिविर स्थल : मधुवन में, माधवपुर (घेड) व्हाया : केशोद जि. जूनागढ़ (सौराष्ट्र)

(२) तिथियां : २७ अक्टूबर से ३१ अक्टूबर, ७४ तक

(३) प्रवेश शुल्क : सहज प्रेम।

(४) ठहरने और भोजन की व्यवस्था : मां योग अन्नपूर्णा की ओर से नियोजित की गई है।

(५) साधक को बेडिंग लेकर २६ अक्टूबर संध्या तक पहुंचना है।

शिविर कार्यक्रम :

सक्रिय ध्यान, कीर्तन ध्यान, त्राटक ध्यान और
आत्म निवेदन ध्यान

साधक २० अक्टूबर तक अपनी उपस्थिति की सूचना निम्नांकित पते पर प्रेषित करें :

स्वामी ब्रम्ह वेदांत,
'रजनीश सत्संग मंदिर'
रूपम साइकिल स्टोर्स, हरीश टाकीज के पास,
पोरबंदर (गुज.)

विशेष संपर्क कर अहमदाबाद में भी जानकारी प्राप्त कर सकते हैं :

स्वामी आनंद बोधिसत्व, एम–५, मेघालय एवेन्यु सोसाइटी,
सरदार पटेल कालोनी के पास, अहमदाबाद

★

भगवान रजनीश दर्शन की अन्य पत्र-पत्रिकाएं

	प्रकाशन स्थल	वार्षिक मूल्य
१ रजनीश संदेश (हिन्दी-मासिक)	: जीवन जागृति केन्द्र, ब्रह्मदेव भवन, पुरंदरपुर, पटना (बिहार)	१५-००
२ योग दीप (मराठी पाक्षिक)	: C/o जीवन जागृति केन्द्र, १०१, टिम्बर मार्केट, पूना-२	१०-००
३ SANNYAS (English Bi-Monthly)	C/o Selprint, A. Z., Industrial Area, Fergusson Road, Lower Parel, BOMBAY : 13	१८-००
४ "रजनीश-पत्रिका" (गुजराती मासिक)	जीवन-जागृति-केन्द्र, भवानी चेम्बर्स, आश्रम रोड, अहमदाबाद-९	१०-००

मनन जीवनोपयोगी (आध्यात्मिक हिन्दी मासिक) मनन

वार्षिक मूल्य ६ रु. ☐ द्विवार्षिक मूल्य ११ रु. ☐ त्रिवार्षिक मूल्य १६ रु.

✠ दुरंगे ४८ पृष्ठ ✠

मनन का प्रत्येक अंक :

★ संत विचारकों व विद्वानों की वैज्ञानिक ढंग से लिखी आध्यात्मिक रचनाओं को प्रकाशित करता है। ★ वेदान्त और धर्म की गहन गुत्थियों को सुलझाने की सीधी और साफ विधियों को उजागर करता है। ★ मानव को उसकी दिव्य सत्ता की ओर उन्मुख करने वाला क्रांतिदूत। ★ पारिवारिक तथा खेल-कूद, ज्ञान-विज्ञान का अनूठा समन्वय।

● पांच ग्राहक एक साथ बनाकर भेजने वाले को मनन के १२ अंक मुफ्त।

सम्पर्क करें : तुलसी मानस प्रकाशन,

गुप्ता मिल्स इस्टेट, रे रोड, बम्बई ४०० ०१० फोन : ३९१८३१

★ भगवान रजनीश आश्रम ★

[१७, कोरेगांव पार्क, पूना–१ (महा०) ○ टेलीफोन : २२८४५]

भगवान श्री के अमृत मार्ग निर्देशन और सान्निध्य में

✠ कार्यक्रम ✠

- २१ सितम्बर से १० अक्टूबर ७४ तक, प्रतिदिन सुबह ८ बजे से *'दिया तले अंधेरा'* विषय पर हिन्दी में प्रवचन।

  प्रवेश : प्रति व्यक्ति ५ रु० दान-पत्र द्वारा।

- ११ अक्टूबर से २० अक्टूबर ७४ तक

  समाधि साधना शिविर *(अंग्रेजी भाषा में)*

- शिविर के अन्य कार्यक्रम :

  सक्रिय ध्यान, टेप्ड प्रवचन प्रसारण, कीर्तन ध्यान, सूफी दरवेश नृत्य।

☐ विस्तृत जानकारी एवं प्रवेश हेतु उपर्युक्त पते पर मा योग लक्ष्मी से सम्पर्क करें।